

सामाजिक संरचना में दर्शन की भूमिका

ज्ञानञ्जय द्विवेदी

समाज को संरचित करने, उसे अगाध गति से चलने और अक्षुण्ण बनाए रखने की दृष्टि से दर्शन और दर्शन की विभिन्न शाखाओं का महत्वपूर्ण और अविस्मरणीय भूमिका थी, है और रहेगी। इनके मौलिक गुणों जैसे न्याय, त्याग, समर्पण, धर्म परायणता, ईमानदारी, भ्रातृत्व, सत्य-निष्ठा, जीने की कला आदि को लेकर प्रस्तुत संदर्भ में, इन्हीं के ताने-बाने से सामाजिक संरचना को एक बार फिर से बुनने का प्रयास किया जा रहा है। विश्वबंधुत्व जैसे महान आदर्श को उजागर करने के लिए समाज को संसार के रूप में यत्र-तत्र दर्शाया गया है।

सामाजिक संरचना में दर्शन की भूमिका निर्धारित करने के लिए हमें दर्शन के उन स्वर्णिम सुगन्धित पृष्ठों का अवलोकन करना होगा। जिन पृष्ठों की छाया में ही आज की सामाजिक संरचना रची-बसी है। या जिन स्वर्णिम और सुगन्धित पृष्ठों की खुशबू से आज तक की सामाजिक संरचना सुगन्धित है। ऋषियों - मुनियों के मन्त्रोच्चार से संरचित इस समाज को हम मंत्रयुगीन समाज कह सकते हैं। सबसे प्राचीन संहिता ऋक् पर दृष्टिपात करते हैं तो हम पाते हैं कि समाज के चार वर्णों (चातुर्वर्ण्य) का प्रतिवादन ऋक् संहिता में किया गया। तत्कालीन सामाजिक संरचना के इन चार वर्णों का आदर्श और लक्ष्य बहुत ऊँचा था।

समाज के संरचित होने के पश्चात समाज को सुचारू रूप से संचालित होने के लिए यह आवश्यक था कि इनमें कार्यों का विभाजन हो। इस प्रकार सामाजिक आवश्यकता और मानवों के स्वाभाविक प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार ही तत्कालीन समाज संरचित हुआ। इस संरचना में कुछ लोग ब्राह्मण पुरोहित थे। उनके पास न संपत्ति थी और न कार्यकारी शासन की शक्ति। ये लोग द्रष्टा ऋषि थे और तत्कालीन सामाजिक संरचना के अन्तःकरण स्वरूप थे। क्षत्रिय लोग प्रशासक थे। जिनका सिद्धान्त था, राज्य शासन, रक्षा एवं संचालन और ये तत्कालीन सामाजिक संरचना के वाह्य स्वरूप थे। वैश्य लोग व्यापारी और कारीगर थे। शिल्प-कौशल वाले इन वैश्यों का उद्देश्य था कार्यपटुता और ये तत्कालीन सामाजिक संरचना के खाद्यान्न स्वरूप थे। कामगा श्रमिक वर्ग शूद्र थे। ये समाज सेवा में तत्पर थे और तत्कालीन सामाजिक संरचना के श्रम स्वरूप थे। चूंकि ये चारो वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) सामाजिक संरचना में ही सन्निहित थे अतः समाज की दृष्टि में सभी वर्ण समान थे, कोई बड़ा और छोटा नहीं था। महाभारत के अरण्य पर्व में कहा गया कि-

‘एकवर्णमिदम् पूर्व विश्वमासीद् युधिष्ठिर।

कर्मक्रिया विशेषेण चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम् ॥

अर्थात् पहले सारा संसार एक ही वर्ण था, बाद में चार वर्ण लोगों के अपने-अपने आचरण के फलस्वरूप संरचित हुए।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के इस मंत्र से भी तत्कालीन सामाजिक संरचना के चार वर्णों की उत्पत्ति दर्शायी गयी है।

पुरुषस्य मुखमासीद बाहु राजन्य कृतः।

ऊरूतदस्य यद्वैश्यं पदभ्यां शूद्रोऽजायत्।।

अर्थात् परम पुरुष (ब्रह्म) के मुख से ब्राह्मणों की, भुजाओं से क्षत्रियों की ऊरु से वैश्य तथा पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। चातुर्वर्ण्य मया सृष्टम् गुण कर्म विभागशः, नामक गीता के इस श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि भगवान श्री कृष्ण ने स्वभाव, गुण और योग्यता के आधार पर समाज को चार वर्णों में संरचित किया। ये चार वर्ण तत्कालीन सामाजिक संरचना के चार व्यूह थे। इन चारों व्यूहों को हिलाने का आशय तत्कालीन सामाजिक संरचना को हिलाने से था। अतः मंत्रों पर आधारित इस समाज की संरचना में ही अनेकानेक प्रकार के मानव जीवन के लिए उपयोगी, आदर्श, मन्त्र, नियम आदि सन्निहित थे और उसी मन्त्रोच्चार के बल पर समाज संरचित होने के साथ ही साथ चलता भी था।

सामाजिक नियम सुचारू रूप से संचालित हो, इसके लिए सामाजिक संरचना में ही दण्ड की भी व्यवस्था थी। शूद्र को अपराध का आठ गुना दंड, वैश्य को आठ से सोलह गुना, क्षत्रिय को सोलह से बत्तीस गुना और ब्राह्मण को बत्तीस से चौंसठ गुना या इससे अधिक दण्ड की व्यवस्था थी। तत्कालीन सामाजिक संरचना इस बात का भी संकेत देती है कि लोग अपने दायित्वों के प्रति पूर्णतः सचेष्ट थे तथा समाज मानीवय मूल्यों के संरक्षण हेतु विशद् रूप से तत्पर था।

नोट - (तत्कालीन सामाजिक संरचना में जिस प्रकार चार वर्ण सन्निहित थे। उसी मानव का व्यक्तिगत जीवन भी चार आश्रमों में विभक्त था। ये आश्रम क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम थे।)

मानवीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब मन्त्रोच्चार करने वाले स्वयं को सर्वोपरि समझने लगे तथा समाज के अन्य वर्णों को हेय दृष्टि से देखने लगे तो इस मंत्रयुगीन सामाजिक संरचना को कब तक बचाया जा सकता था? धीरे-धीरे यह समाज यंत्रयुगीन समाज में परिवर्तित होता गया। अर्थात् सामाजिक संरचना में मन्त्रों के स्थान पर यन्त्रों ने अपना आधिपत्य जमाना शुरू कर दिया-- औरंगजेब ने अपने एक पत्र में अपने अध्यापक मुल्ला साहेब को लिखा है - “तुमने मेरे पिता शाहजहाँ से कहा था कि तुम मुझे दर्शन पढ़ओगे। यह ठीक है और मुझे भली-भांति याद है कि तुमने अनेक वर्षों तक मुझे वस्तुओं के सम्बन्ध में ऐसे अनेक अव्यक्त प्रश्न समझाये, जिनसे मन को कोई सन्तोष नहीं होता और जिनका मानव समाज के लिए कोई उपयोग भी नहीं है। ऐसी थोथी धारणाएँ और खाली कल्पनाएँ

जिनकी यह विशेषता थी कि उन्हें समझ पाना बहुत कठिन था और भूल पाना बहुत सरल। क्या तुमने कभी मुझे यह सिखाने की चेष्टा की कि शहर पर घेरा कैसे डाला जाता है: तथा सेना को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है? इन वस्तुओं के लिए मैं अन्य लोगों का आभारी हूँ। आपका बिलकुल नहीं।”

इस पत्र को यहाँ उल्लिखित करने का मेरा अभिप्राय यह है कि शहर पर घेरा डालने या सेना को व्यवस्थित करने की प्रधानता ही सामाजिक संरचना की प्रधानता थी। जीवन के आदर्शों, मूल्यों, दर्शन और धर्म जैसे केन्द्रीभूत प्रश्नों को थोथी धारणाएँ या खाली कल्पनाएँ कह कर हटा तो दिए गए पर घेरा डालने की इस संरचना ने माननीय समाज की नींव ही हिला कर दी। जो समाज घेरा डालने या डेरा जमाने में सक्षम थे। वे अपनी प्रभुता कायम रखने में भी समर्थ रहे। पर जो इसमें सक्षम न हो सके, उन समाजों के संरचना पर ही प्रश्न चिह्न लग गया।

हम यह भी कह सकते हैं कि मंत्र युगीन समाज यानि प्रारम्भिक समाजों के मामलों में जहाँ सामाजिक संरचनाएँ आन्तरिक और आध्यात्मिक ढंग की होती थी। वहाँ यन्त्रयुगीन समाज में ये संरचनाएँ भौतिक और वाह्य ढंग की होने लगी। अब सामाजिक उन्नति को भौतिक या तकनीकी दृष्टि से मापा जाने लगा। मन और आत्मा के सृजनात्मक परिवर्तन को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। सामाजिक संरचना का सोपान जो कि मानव की आत्मा से सम्बन्धित था अब वह मानव के शरीर तथा भौतिक संसाधनों से जुट गया। विश्वबंधुत्व की बातें थोथी धारणाएँ या काल्पनिक धारणाएँ होती गईं। अपने देश और अपने समाज के प्रति प्रेम ही प्रमुख होता गया। और इसी से समाज संरचित भी होता रहा। पर जब ऐसा प्रेम पनपता है तो स्पष्ट है कि इसके मूल में आत्महित, भौतिक लोभ और प्रभुत्व की लालसा आदि तत्व होते हैं। क्योंकि ऐसे प्रेमों का प्रेरक आदर्श तो यही सब तत्व है।

पर यदि हम यह मान लें कि सबसे अधिक शक्तिशाली जाति को ही समाज या फिर संचार को संरचित करने का अधिकार है तो निष्ठुरता ही दैवीय इच्छा की साधना बन जाती है। जब एक आक्सफोर्ड के विद्यार्थी ने हिटलर से पूछा कि उसकी नीति क्या है? तो उसने आवेशपूर्ण शब्द में उत्तर दिया ‘डाट्सलैंड’ अर्थात् जर्मनी। और हम इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि वह अपने उद्देश्य के प्रति अविचलित रूप से सच्चा भी रहा। उसने कहा - **‘बनने दो हमें अमानव’** यदि हम जर्मनी की रक्षा कर पाएँगे तो समझो कि हमने संसार का महान कार्य कर लिया। **‘करने दो हमें गलत का’** यदि हमने जर्मनी की रक्षा कर ली तो समझो कि हमने संसार की सबसे बड़ी गलती मिटा दी। **‘होने दो हमें अनैतिक’** यदि हम अपने लोगों की रक्षा कर पाए तो समझो कि हमने नैतिकता की पुनः स्थापना के लिए द्वारा खोल दिया है। पर हिटलर को इस बात का आभास नहीं था कि सत्य और सहानुभूति का मनोवेग जो मानव स्वभाव और उसके सामाजिक संरचना में रचा-बसा है।

हमें प्रेरणा देता है कि हम एक मित्रतापूर्ण समाज या संसार में स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में रह सकें, जी सकें। पृथ्वी को एक समाज मानकर पड़ोसियों की भांति रहने में जो आनन्द है। वह हिटलर की जर्मनी में नहीं। हिटलर जैसे सच्चे देशभक्त को मैं कहना चाहूँगा कि राज्यों और राष्ट्रों के, जो कि बढ़ते-घटते रहते हैं, सम्बन्ध में अन्तिम या शाश्वत कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पर दीन से दीन व्यक्ति में भी आत्मा की वह चिनगारी विद्यमान रहती है जिसे शक्तिशाली से शक्तिशाली साम्राज्य भी कुचल नहीं सकते। हम सबका मूल एक ही जीवन में है। सब एक ही ब्रह्म के अंश हैं, अमरता के पुत्र हैं। (अमृतस्यस्य पुत्राः सन्ति) ।

यदि हम सच्चे देशभक्त हैं तो हमारा लगाव स्थानीय, जातीय या फिर राष्ट्रीय न होकर मानवीय होना चाहिए। हमारी सोच एक शुद्ध राजनीतिक की नहीं अपितु एक शुद्ध दार्शनिक की होनी चाहिए। यह सबके लिए स्वतंत्रता, स्वाधीनता, शान्ति और सामाजिक प्रसन्नता के प्रति प्रेम के रूप होना चाहिए। हम केवल अपने समाज या फिर अपने देश के लिए युद्ध नहीं करेंगे। अपितु सभ्यता के लिए युद्ध करेंगे, इसलिए युद्ध करेंगे कि इससे मानवता की रक्षा हो सके, विश्वबंधुत्व का भाव विकसित हो सके और एक स्वस्थ समाज की संरचना हो सके।

जब हम अपने सामाजिक व्याधियों पर दृष्टिपात करते हैं तो भी हम पाते हैं कि हमारे सामाजिक जीवन के गम्भीर से गम्भीर व्याधि का कारण हमारी एक सामाजिक संस्था का, दूसरी सामाजिक संस्था के बीच विभिन्न प्रकार के विचारों को लेकर टकराव या व्यवधान है और यह टकराव या व्यवधान उन सामाजिक संरचनाओं के मूल में ही है। प्रकृति ने अनेक जातियाँ बनाई हैं। जिनकी भाषाएँ, धर्म और सामाजिक परम्पराएँ भिन्न-भिन्न हैं। उसने ही अन्य जीवों से श्रेष्ठ मनुष्य जीवन को यह कार्य सौंपा है कि वह इस जगत में व्यवस्था उत्पन्न करे और जीवन का ऐसा रास्ता खोज निकाले जिसमें विभिन्न समाज आपसी मतभेदों को आपस में ही हल करके, बल का प्रयोग किये बिना शान्तिपूर्वक एक दूसरे के साथ रह सके। प्रकृति ने यह समाज युद्ध करने के लिए नहीं रचा, अपितु इसलिए रचा कि इसमें विभिन्न समूह अच्छे जीवन के साथ एक दूसरे के साथ सहयोग कर रह सके।

स्वस्थ समाज की संरचना में हमें यह सतत् ध्यान रखना होगा कि सृजन के काल बड़े कष्टों के काल हुए हैं। हम जिस समाज में रहते हैं। उसके हम निर्माता हैं। जो संस्थाएँ गलत मार्ग पर चली गई हैं उन्हें सही मार्ग पर लाना हमारा ही कर्तव्य है। भारतीय दार्शनिकों के विचार में यदि हम समाज को सच्चे ढंग से संरचित करना चाहते हैं तो हमें अमानवों के प्रति भी मानवता बरताना सोचना चाहिए। हमें समाज की संरचना से ही उन दशाओं को समाप्त करना होगा जो युद्धों के कारण हैं तथा दार्शनिक चेतना से उसे संरचित करना होगा। हमें सामाजिक संरचना हेतु एक नया रास्ता खोजने के लिए ईमानदारी, सत्य और निष्ठा से काम करना होगा, तोपों और बन्दूकों से नहीं। हमें एक ऐसे समाज की संरचना हेतु प्रयास

करना होगा जिसमें विश्वबंधुत्व का भाव सन्निहित हो। तभी हम रोगी समाज की व्याधियों को जड़ से दूर कर सकते हैं।

आज के सामाजिक संरचना में ही हम वे तत्व पाते हैं जिसमें विवाद सर्वप्यापी है। परम्पराएँ, संयम, आदर्श, स्थापित कानून और व्यवस्था आश्चर्यजनक रूप से शिथिल हो गए हैं। जो विचार कल तक सामाजिक संरचना में और न्याय से अविच्छेद समझे जाते थे और जो समाज में शताब्दियों से लोगों के आचरण का निर्देशन और अनुशासन करने में समर्थ रहे थे, आज बह गए हैं। समाज गलतफहमियों, कटुताओं, और संघर्षों से संरचित हो रहा है। समाज का सम्पूर्ण वतावरण सन्देह, अनिश्चितता और भविष्य के अत्यधिक भय से भरा है। मानव जाति के बढ़ते हुए कष्टों, आर्थिक दरिद्रता की तीव्रता समाज में अभूतपूर्व पैमाने पर देखी जा सकती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मानव इतिहास के अन्य किसी भी समय में इतने लोगों के सिर पर इस प्रकार का इतना बड़ा बोझ नहीं था। या वे इतनी यंत्रणापूर्ण अत्याचारों और मनोभावनाओं के कष्ट नहीं पा रहे थे।

मेरे विचार में इन सभी त्रासदियों के मूल में हमारी सामाजिक संरचना है। जिसमें व्याप्त कटुता मानव जाति के स्वार्थपूर्ण क्रियाकलापों का परिणाम है। कहने को तो मानव एक सामाजिक प्राणी है। पर उसका अपना स्वार्थ उसकी संरचना में ही मजबूती से घर बना लिए हैं। यदि समय रहते इसका रोक-थाम नहीं किया गया तो हम पूर्ण विनाश की ओर एक लम्बी छलांग लगा लेंगे। और एक ऐसे बौद्धिक अंहकार और नैतिक बर्बरता के काल की ओर बढ़ने की तैयारी कर रहे होंगे। जिसमें समाज की अच्छी से अच्छी उपलब्धियाँ जो हमारे दार्शनिकों और चिन्तकों की देन है, ध्वस्त हो जाएगी।

आज विज्ञान भी ऐसी ही बातें कर रहा है। जिससे यह पृथ्वी नष्ट हो सकती है। यह कभी सुदूर भविष्य में चन्द्रमा के बहुत निकट आ पहुंचने से या सूर्य के ठंठा पड़ जाने से नष्ट सकती है। पर नष्ट होने हेतु मेरे विचार में इन सभी से महत्वपूर्ण कारण एक समाज से दूसरे समाज का टकराव हो सकता है। जो कि वैज्ञानिक विनाश से कहीं ज्यादा भयंकर है। क्योंकि सामाजिक टकराव सम्पूर्ण मानवता (भूत, वर्तमान और भविष्य) के विध्वंस का सूचक बन सकता है जिसको सहेजने में हमारे दार्शनिकों को कई युग लग सकते हैं।

यहाँ मैं कहना चाहूँगा कि कुछ श्रेष्ठ दार्शनिकों द्वारा एक सुन्दरतम समाज की संरचना ही उपरोक्त विध्वंस से बचने के लिए भविष्य में हमारी आशा है। इन श्रेष्ठ आत्माओं का यह कथन हमें एक जीवन्त, गतिशील, नैतिक परायण समाज की संरचना के प्रति आशान्वित अवश्य करती है। हम यह महसूस भी करते हैं कि पिछली दशाब्दियों में हमारे समाज की न केवल भैतिक उन्नति हुई है। अपितु हमारे समाज में दार्शनिक चेतना और नैतिक आदर्शों में भी सुनिश्चित रूप से वृद्धि हुई है जो कि आश्चर्यजनक तो है। पर प्रत्यक्षतः दिखाई भी पड़ रहा है।

मनुष्य के प्रति मनुष्य के सम्बन्धों और सामाजिक संरचना के बारे में आज मानव के विचारों में वास्तविक और दार्शनिक प्रगति देखी जा सकती है। बालश्रम के विरुद्ध जेहाद, कारखाना कानून, वृद्धावासी की पेंशने, दुर्घटना के लिए मुआवजा, अनाथों के लिए अनाथाश्रम, अपने समाज के संकीर्ण दायरे से निकल कर विश्वबंधुत्व की बातें, परिवार, सम्पत्ति, विवाह, तलाक आदि को नैतिक और मानवीय आधार प्रदान करने की ललक आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं। जिनसे यह स्पष्ट होता है कि समाज के प्रत्येक सदस्य के प्रति सामाजिक जिम्मेदारी की भावना बढ़ रही है। वस्तुतः यही किसी राजनीतिक की नहीं अपितु एक दार्शनिक का ही चमत्कार माना जा सकता है। क्योंकि समाज के इतिहास में इससे पहले कभी शान्ति के लिए इतनी तीव्र इच्छा और युद्ध के विरुद्ध ऐसी विस्तृत घृणा नहीं हुई थी, जैसा कि आज देखा और पाया जा रहा है।

इस प्रकार समाज की संरचना में दार्शनिक तत्वों के अभाव के कारण आज के समाज की दशा मूर्च्छा की सी है। समाज को मूर्च्छित कहने का आशय यह है कि इसमें आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आदर, सत्य और सौंदर्य के प्रति प्रेम, धर्मपरायणता, न्याय और दया, पीड़ितों के साथ सहानुभूति और मनुष्य मात्र के भ्रातृत्व में विश्वास ये सभी दार्शनिक तत्व मौजूद तो हैं। पर मूर्च्छित अवस्था में है। इसे एक ऐसे दार्शनिक चेतना की आवश्यकता है। जो इस मूर्च्छित समाज को चेतना में ला सके। आज मनुष्य में दार्शनिक चेतना, सहृदय की तीव्रता और सम्पूर्णता के अर्थ का विशद् ज्ञान दर्शन दे रहा है। और इस दार्शनिक चेतना के उदयोपरान्त जब समाज संरचित होगा तो वह निश्चितरूपेण अधिक उपयुक्त, सुसंगत और जीवनोपयोगी सिद्ध होगा। जो न केवल व्यक्तियों या समाजों अपितु जातियों और राष्ट्रों को भी प्रभावित करेगा। पर हमें इस नयी सामाजिक संरचना के लिए १०के० ४७ राइफलों और बन्दूकों को कारतूसों से ओत-प्रोत करने के बजाय मन या आत्मा को शुद्ध दार्शनिक चेतना से ओत-प्रोत करना होगा।

अस्तु, यदि समाज को जीवित बचाना है तो हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि इसकी संरचना शक्ति, यश, सबलता, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा से नहीं होनी चाहिए। अपितु मानव मन की स्वतन्त्र गतिविधि से, नैतिक सद्गुणों की वृद्धि से, सुरुचि के विकास और जीने की कला में निपुणता प्राप्त करने आदि जैसे दार्शनिक तत्वों से होनी चाहिए।

दर्शन विभाग

बी.एस.एस.कालेज

सुपौल - 852121



श्रीस्वामिनारायण सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त और भक्तिसाधना की विकसन प्रक्रिया

साधु श्रुतिप्रकाशदास

गुणातीतोऽक्षरं ब्रह्म भगवान् पुरुषोत्तमः ।
जनो जानन्नदं सत्यं मुच्यते भवबन्धनात् ॥
गुणातीतं गुरुं प्राप्य ब्रह्म रूपं निजात्मनः ।
विभाव्य दासभावेन स्वामिनारायणं भजे ॥

१. उपक्रम

भारतीय धर्म और दर्शन दोनों एक ही वस्तुतत्त्व के दो पहलू हैं। धर्म और दर्शन को यहाँ कोई भिन्न नहीं कर सकते। इसीलिए सम्प्रदायों के आविष्कार के साथ विभिन्न तत्त्वदर्शनों का आविष्कार भारतवर्ष में होता रहा है।

बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त, वैष्णव इत्यादिक सम्प्रदायसमूह जीवित हैं। इस प्रत्येक सम्प्रदायसमूह में भी नये नये सम्प्रदाय विकसित होते हैं। एक सम्प्रदाय का पूर्ण विकास होने से पहले वह किसी न किसी सम्प्रदाय के साथ जुड़ा हुआ रहता है। सम्प्रदायप्रवर्तक आचार्य अथवा गुरु अपने सिद्धान्त अथवा तत्त्वज्ञान को सम्पूर्णतया एक साथ नहीं कह सकते, किन्तु अपने पास इकट्ठे हुए शिष्यसमुदाय जिस पूर्वसम्प्रदाय के गुणानुरागी हो उसके विचार को समन्वित करके पात्रता के अनुसार अपने विचार अथवा दर्शन का उपदेश करते हैं।

शिष्य समुदाय को भी आचार्य के प्रति विश्वास तभी पैदा होता है जबकि, गुरु अथवा आचार्य का कोई वैदिक अथवा आगमिक मूल हो। उनका मत किसी जन प्रसिद्ध सम्प्रदाय से जुड़ा हुआ हो। इसीलिए अपने नये सम्प्रदाय को आचार्य अथवा मतप्रवर्तक किसी न किसी प्राचीन और प्रसिद्ध सम्प्रदाय के साथ जोड़ते हैं। कभी नामनिर्देश द्वारा, कभी स्वयं दीक्षा लेकर, कभी इनके बहुत सारे विचारों को अपनाकर जनता में विश्वास पैदा करते हैं।

सम्प्रदाय सहसा वृक्षरूप नहीं बनता, अंकुरित समय में उसे भी अन्य सम्प्रदाय की सहाय प्राप्त होती है। जब अपने सम्प्रदाय की परिपक्व अवस्था बनती है, शिष्य

समुदाय गुरु पर पूर्ण विश्वस्त बनता है, सम्प्रदाय में वैचारिक परिपक्वता बढ़ती है, तब अपने आप दूसरे सम्प्रदाय का सहारा टूट जाता है, और यह सम्प्रदाय स्वनिर्भर बनता है, जैसे बड़ा हुआ वृक्ष ।

इस अंकुरित अवस्था का चित्र और विशालकाय अवस्था के चित्र को देखकर कभी कभी दोनों में विरोध दिखाई पड़ता है । ऐसे परिपक्व अवस्था के सांप्रदायिक साहित्य के शब्द और अंकुरित अवस्था के शब्दों में भी विरोध-सा प्रतीत होता है, इस विरोधाभास को देखकर कभी कभी सम्प्रदाय के अनुयायीगण अपने सम्प्रदाय के प्रवर्तक के विचारों से बहुत दूर चले गये हैं ऐसा सम्प्रदाय के रहस्य-अनभिज्ञ व्यक्ति को लगता है । कभी-कभी यह चिंतन वास्तविक भी बनता है, लेकिन सब जगह यह विरोध विरोध ही नहीं रहता, कभी कभी विरोधाभास भी बन जाता है ।

जहाँ मत प्रवर्तक और समकालीन शिष्यों के सभी विचारों के साथ पश्चात्कालीन ग्रन्थों में अधिकतया आसमान-जमीन का अंतर आ जाता है वहाँ सम्प्रदायप्रवर्तक के विचारों को नये शिष्यों ने बदल दिया है अथवा विरोधी विचारधारा प्रवर्तित की है ऐसा कह सकते हैं । इन सभी विचारों को समझने के लिए, हम थोड़े दृष्टांत पेश करेंगे ।

२. दृष्टान्त-सन्दर्भ

शुद्धाद्वैतमतप्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्यजी के तत्त्वदीप ग्रन्थ के, शास्त्रार्थकथन प्रकरण की पुष्पिका में 'इति श्रीकृष्णव्यासविष्णु-स्वामिमतवर्ति श्रीवल्लभाचार्यविरचिते तत्त्वदीपे शास्त्रार्थकथनं नाम प्रथमप्रकरणम्' ऐसा मिलता है ।

श्रीवल्लभाचार्य की लिखी हुई भागवत टीका सुबोधिनी के प्रारंभ में मङ्गलाचरण के तृतीय श्लोक में 'गोपीपतिवन्दित' शब्द को लेकर पुरुषोत्तमजी कहते हैं, 'अत्र श्रीगोपीपतिवन्दितेन इत्यनेन परम्परया विष्णुस्वामिमतानुवर्तित्वं सूचितम्' (यहाँ गोपीपतिवन्दित पद देकर वल्लभाचार्य के पिता को विष्णुस्वामी के मतानुयायी कहे हैं ।) अणुभाष्य की टीका रश्मि में^२ तथा सत्सिद्धान्तमार्तण्ड में^३ वल्लभाचार्य का विष्णुस्वामीमतानुयायित्व का निरूपण किया है । इन सभी विचारों से यह कह सकते हैं कि, वल्लभाचार्यजी के शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के विकास में विष्णुस्वामी के सिद्धान्त का योगदान है ।

विष्णुस्वामी के सिद्धान्त सम्पूर्णरूप से प्राप्त नहीं हैं, फिर भी जितने अंश मिलते हैं उसमें और वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत में समन्वय नहीं बैठता है ।

वल्लभाचार्यजी स्वयं कहते हैं कि, विष्णुस्वामी का भक्तियोग तामसमार्ग है । हमारा निर्गुणमार्ग है ।^{१४} वल्लभाचार्य जीव को स्पष्टरूप से परमात्मा का अंश मानते हैं ।^{१५} अर्थात् परमात्मा और जीव के बीच अंशांशिसम्बन्ध को स्वीकारते हैं, जबकि विष्णुस्वामी और मध्वाचार्य वगैरह ब्रह्माद्वैतवाद के विरोधी थे, ऐसा अधिकरण संग्रह में निर्भयराम^{१६} कहते हैं । विष्णुस्वामी नृसिंहोपासक थे ऐसा रसेश्वरदर्शन^{१७} में सर्वदर्शनसंग्रहकार कहते हैं । जबकि, वल्लभाचार्य श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे ।

इतने सैद्धान्तिक भेद रहने पर 'विष्णुस्वामिमतानुवर्तित्व' का क्या अर्थ करना चाहिए ? क्या वल्लभस्वामी अपने पूर्ववर्ती आचार्य से विरुद्ध अथवा भिन्न विचार करते थे ? अथवा विष्णुस्वामिमतानुवर्तित्व ही गलत है ? सम्प्रदाय में इसका समाधान के लिए प्रयास अवश्य हुए हैं ।

माध्वगौडीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु द्वैतमतप्रवर्तक मध्वाचार्य के सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे । चैतन्यचरित्रामृत^{१८} के भावार्थ में ए०सी० भक्तिवेदान्तस्वामी ने तथा गोविन्दभाष्य के सम्पादक कृष्णदास ने मध्वाचार्य से लेकर चैतन्य महाप्रभु के दीक्षागुरु अद्वैताचार्य तक नामावली दी है । जैसे, मध्व-पद्मनाभ-नरहरि-माधव-अक्षोभ्यतीर्थ-जयतीर्थ-ज्ञानसिन्धु-महानिधि-विद्यानिधि-राजेन्द्र-जयधर्म-पुरुषोत्तम-व्यासतीर्थ-लक्ष्मीपति-माधवेन्द्रपुरी-अद्वैतप्रभु-चैतन्यमहाप्रभु ।

इस प्रकार चैतन्य महाप्रभु स्वयं मध्वसम्प्रदाय में दीक्षित थे, इसीलिए सम्प्रदाय के नाम में 'मध्व' पद भी स्वीकृत है, फिर भी चैतन्य सम्प्रदाय और मध्व सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में महद् अंतर दिखाई पड़ता है । भागवत में^{१९} श्रीकृष्ण को परमात्मा वासुदेव का कृष्णकेश अर्थात् अवयव कहने वाला सन्दर्भ ज्यों का त्यों मध्वदर्शन में स्वीकृत है ।^{२०} जबकि कृष्ण स्वयंरूप से सर्वावतारी ही है ऐसा चैतन्य महाप्रभु^{२१} स्पष्ट कहते हैं ।

मध्व सम्प्रदाय में वैकुण्ठ में बिराजमान विकुण्ठ भगवान, श्वेतद्वीपवासी वासुदेव-नारायण और शेषशायी अनंतनारायण तीनों एक ही परमात्मा के समसामर्थ्यवाले स्वरूप स्वीकृत हैं ।^{२२} उनमें श्वेतद्वीपवासी वासुदेव नारायण पृथ्वी पर अवतरित होते हैं । वासुदेव नारायण के सभी अवतार समान हैं । चाहे वह कलावतार हो अथवा अंशावतार; परमात्मा के अवतारों में रामचन्द्र और पशुराम भी समान हैं, भले ही रामचन्द्रजी से परशुराम हार गये हों । यह तो भगवान की लीला समझनी चाहिए ।^{२३}

जबकि, चैतन्य सम्प्रदाय में वैकुण्ठ, श्वेतद्वीप, क्षीरसागर सभी स्थान निम्न कक्षा के और तारतम्यसहित हैं, गोलोक अथवा वृन्दावन ही सर्वश्रेष्ठ हैं।^{१४} अवतारों में भी पुरुषावतार, लीलावतार, गुणावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार, इत्यादि भेद कहे हुए हैं।

मध्व सम्प्रदाय में परमात्मा के साथ लक्ष्मीजी का स्थान अनन्य है।^{१५} जबकि, चैतन्य सम्प्रदाय में राधा ही सर्वेश्वरी ह्लादिनी शक्ति^{१६} है। राधा का गौरव श्रीकृष्ण के समान है।

चैतन्य महाप्रभु ने मध्व सम्प्रदाय में दीक्षा ली थी, मतलब कि अपने सम्प्रदाय की अंकुरित अवस्था में पूर्वकालीन सम्प्रदाय से सहाय ली थी। इस का मतलब यह तो नहीं ही होता है कि, सम्प्रदाय की प्रौढ़ावस्था में मध्वसम्प्रदाय का ही अनुसरण करना चाहिए। मध्वाचार्य स्वयं वायु के अवतार थे। जबकि, चैतन्य महाप्रभु को सांप्रदायिक विद्वान स्वयं श्रीकृष्ण के ही अवतार के रूप में स्वीकार करते हैं। सम्प्रदाय की प्रौढ़ावस्था में चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों ने लिखे हुए ग्रन्थ ही सम्प्रदाय के परिचायक हैं, नहीं की प्राथमिक अवस्था की दीक्षा। इसी प्रकार अन्य संप्रदायों में भी परिस्थिति प्राप्त होती है, विस्तार भय से यहाँ दृष्टांत रूप में थोड़े संप्रदाय के ही उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

३. स्वामिनारायण सम्प्रदाय में विचिकित्सा

स्वामिनारायण सम्प्रदाय के संदर्भ में गोस्वामी श्याम मनोहरजी ने दार्शनिक त्रैमासिक के अक्टूबर-दिसम्बर, २००४ के अंक में, 'श्रीस्वामिनारायण मतीय वेदान्त सिद्धान्त और भक्तिसाधना की विकसन प्रक्रिया' इस शीर्षक के साथ जिज्ञासाभाव से विचिकित्स्य विषय पेश किये हैं, जैसे कि,

- * शिक्षापत्री और वचनामृत के बीच बीज-अंकुरभाव को छोड़कर वचनामृत की अधिक प्रामाणिकता
- * शिक्षापत्री का वचनामृत से बलवत्तर प्रामाण्य होने से ही वचनामृतोक्त जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म और परब्रह्म : इन पाँच तत्त्वों का शिक्षापत्रीकथित तत्त्वत्रय में समावेश के विरुद्ध तत्त्वपंचक की स्वीकृति।
- * श्रीस्वामिनारायण मत में विशिष्टाद्वैतमत की प्रामाणिकता, श्रीभाष्य की आध्यात्मिक शास्त्र रूप से स्वीकृति और तत्त्वत्रय की स्वीकृति से विरुद्ध नया सिद्धान्त और तत्त्वपञ्चक की मान्यता।

* शिक्षापत्रीकथित राधा सहित श्रीकृष्ण की उपास्यता के विरुद्ध अक्षरब्रह्म गुणातीतानंदस्वामी सहित पुरुषोत्तम श्री सहजानंदस्वामी की उपासना ।
इतने विरोधों के चलते श्रीजीमहाराज की रामानुजमतानुगामिता के निजकण्ठोक्त वचन अब या तो अप्रामाणिक ठहराने पड़ेंगे या फिर रामानुजमतानुगामिताविशिष्ट विशिष्टाद्वैतवादिता को स्वीकार करना पड़ेगा । इन दोनों में क्या करना चाहिए यह चिन्तनीय है ।

४. श्रीस्वामिनारायण सम्प्रदाय में समाधानोपाय

बोचासणवासी श्रीअक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण सम्प्रदाय (BAPS) में सम्प्रदायप्रवर्तक भगवान श्री स्वामिनारायण से आरंभ कर आज तक सांप्रदायिक सिद्धान्त, रहस्य, अभिप्राय इत्यादिक विषयों पर एकवाक्यता पाई जाती है । इसके लिए सम्प्रदाय का पूरा अभ्यास आवश्यक बनता है ।

४.१ शिक्षापत्री और वचनामृत के प्रामाण्यविमर्श

ग्रन्थ प्रामाण्य के सन्दर्भ में स्वामिनारायण सम्प्रदाय के ग्रन्थों के बारे में सोचें तो शिक्षापत्री सदस्य ग्रन्थ है, अर्थात् जनसाधारण ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में लिखे हुए प्रत्येक श्लोक का मर्म पकड़ने के लिए स्वयं शिक्षापत्री में ही कहा है, कि-ऽसाम्प्रदायिकग्रन्थेभ्यो ज्ञेय एषां तु विस्तरःऽङ्गः^{१७} (इस ग्रन्थ का विस्तार सांप्रदायिक ग्रन्थों से समझना चाहिए ।)

शिक्षापत्री में लिखित जनसाधारणता अर्थात् सदस्यता ग्रन्थन्तर्गत विषयों से जान सकते हैं । यहाँ रामानुजीय तत्त्वत्रय का निरूपण,^{१८} शांकरमत अभिप्रेत पञ्चदेव पूजा की मान्यता^{१९}, वल्लभाचार्य प्रोक्त उत्सव विधान का स्वीकार^{२०}, निम्बार्काचार्य-स्वीकृत गोलोकधाम की अभिमति,^{२१} शैवसम्प्रदाय के साथ संवादिता के लिए शिवमन्दिर दर्शन और शिवपूजा का विशिष्ट विधान^{२२} इत्यादि । रामानुज-निम्बार्क वगैरह पूर्व सम्प्रदायों के समन्वय का हेतु समाज के सभी सम्प्रदायों के प्रति आदरभाव है, कोई एक ही सम्प्रदाय अपना सिद्धान्त नहीं है । भगवान स्वामिनारायण का रहस्यगत सिद्धान्त 'ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की भक्ति करना'^{२३} वह तो भिन्न है यही दिखाई पड़ता है, जो वचनामृत से ही परिपुष्ट होता है ।

दूसरी बात, 'यत्परः स शब्दार्थः' इस न्याय से जिस ग्रन्थ का जो प्रधान विषय हो उसी विषय का प्राबल्य उस ग्रन्थ से निकालना चाहिए, न कि विषयान्तर को ।

शिक्षापत्री धर्म अर्थात् सदाचार विषयक ग्रन्थ है ऐसा, ग्रन्थ के आदि में,^{२४} अंत में,^{२५} और मध्य में^{२६} बार-बार कहा है। भाष्कार रघुवीरजी भी कहते हैं कि, ङ्प्रचाचीकशद् वैदेशिकशिष्यान् उज्जिघृक्षासङ्कल्पितादेशलेखव्याजेन परमं रहस्यं धर्मतत्त्वस्यङ्ग^{२७}

इस प्रकार सदाचारवर्णनप्रधान इस ग्रन्थ और तत्त्वज्ञान वर्णन प्रधान वचनामृत के बीच कोई बीजाङ्कुर सम्बन्ध नहीं है। दोनों का विषय ही भिन्न है। दोनों के लेखनसमय में भेद है। वचनामृत का आधा भाग शिक्षापत्री से पहले लिखा गया है, आधा भाग बाद में, इसलिए बीज-अंकुर भाव शक्य भी नहीं है। इन दोनों में से तात्त्विक सन्दर्भ के लिए वचनामृत का ही उपयोग करना चाहिए, बजाय शिक्षापत्री।

४.२ शिक्षापत्री में तत्त्वपञ्चक

फिर भी जब शिक्षापत्री में से ही तात्त्विक विचारों को प्रधानोपादेय समझकर कोई आक्षेप करते हैं, तब शिक्षापत्री में से भी प्रत्युत्तर मिल सकता है। शिक्षापत्री में तत्त्वत्रय अर्थात् जीव, माया और परमेश्वर का निरूपण तो स्पष्ट है। दूसरे दो तत्त्वों का निरूपण भी असंदिग्धतया निहित है, थोड़ी दृष्टि बदलने पर यह भी दिखाई पड़ता है।

४.२.१ ब्रह्मनिरूपण

‘निजात्मानं ब्रह्मरूपं देहत्रयविलक्षणम् ।

विभाव्य तेन कर्तव्या भक्तिः कृष्णस्य सर्वदा ॥’^{२८}

(अपनी आत्मा को तीन देहों से विलक्षण ब्रह्मरूप की विभावना करके, भगवान की भक्ति करनी चाहिए।) यहाँ श्रीकृष्ण पद से परमात्मा, ‘निजात्मा’ पद से जीवात्मा और ‘देहत्रय’ पद से माया का निरूपण है, लेकिन ‘ब्रह्मरूप’ शब्दान्तर्गत ‘ब्रह्म’ क्या तत्त्व है ? यह प्रश्न होता है। ‘सति कुड्ये चित्रम्’ इस न्याय के अनुसार ब्रह्म तत्त्व की पहचान होने पर ही जीवात्मा ब्रह्मरूप होगा। इस ब्रह्मतत्त्व के ज्ञान के लिए सांप्रदायिक ‘वचनामृत’, ‘सत्संगिजीवन’, ‘गुणातीतानंद स्वामी का उपदेश’ इत्यादि ग्रन्थों को देखना पड़ेगा। इन सभी ग्रन्थों में से एक भगवद्धामरूप, भगवान के मुख्यपरिचारक, मुक्तों के आदर्शरूप, आत्यन्तिकविमुक्ति में प्रेरणापद, सेतुरूप, स्वतन्त्र अक्षरब्रह्म तत्त्व की पहचान होती है। इस ब्रह्म तत्त्व वल्लभाचार्य संमत गणितानंदरूप, ज्ञानभक्ति के लिए लक्ष्यरूप, अक्षरब्रह्म से नितरां भिन्न है। यह भगवान स्वामिनारायण का मौलिक दर्शन है। इस प्रकार शिक्षापत्री में ‘तत्र ब्रह्मात्मना कृष्णसेवा मुक्तिश्च गम्यताम्’^{२९} इस श्लोक में भी ब्रह्मतत्त्व का निरूपण प्राप्त होता है।

४.२.२ ईश्वरनिरूपण

शिक्षापत्री में परब्रह्म के निरूपणान्तर्गत लिखा है कि, 'ज्ञेयः स्वतन्त्र ईशोऽसौ सर्वकर्मफलप्रदः'^{३०} (यह परमात्मा सर्व कर्मों के फलप्रदाता स्वतन्त्र ईश्वर हैं ।)

शास्त्रीय पद्धति में कहते हैं, कि 'सम्भवव्यभिचाराभ्यां स्याद्विशेषणमर्थवत्' (कोई भी विशेषण तभी ही सार्थक होता है, जब अपने विशेष्य के साथ उसका संयोग सम्भव हो और विशेष्य को छोड़कर भी विशेषण की अन्यत्र स्थिति हो ।)

शिक्षापत्री में इस परमात्मा के लक्षण में 'स्वतन्त्र ईशः' यह विशेषणविशिष्ट पद क्यों दिया है ? क्या परतन्त्र कोई ईश्वर हैं ? यदि हैं तो, यही एक भिन्न तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित है, नहीं तो 'ईश' पद को 'स्वतन्त्र' विशेषण निरर्थक है । हाँ ! भगवान के अपने शब्दों में निरर्थकता दिखाने की बजाय ईश्वर तत्त्व के स्वतन्त्र निरूपण के लिए शिक्षापत्री की ही आज्ञा से सांप्रदायिक ग्रन्थों में देखना चाहिए । देखने पर वचनामृत, सत्संगिजीवन इत्यादि अनेक ग्रन्थों में जीवतत्त्व से परे और मायातत्त्व में निहित ईश्वरतत्त्व का भूरि वर्णन प्राप्त होता है । इस प्रकार शिक्षापत्री में ही पाँच तत्त्वों का निरूपण है ।

४.३ वचनामृत का परम प्रामाण्य

वचनामृत का प्रामाण्य स्वामिनारायण सम्प्रदाय में निःसंदिग्धतया स्वीकृत है । संख्या और सम्पादक के सन्दर्भ में छोटा-सा मतभेद होने पर भी '२६२' संख्या के वचनामृत अक्षरशः सभी को मान्य है । सङ्ख्या और सम्पादक के विरोध से ही वचनामृत में अप्रामाण्य की गन्ध देखेंगे तब तो वैष्णव सम्प्रदायों के मान्य भगवद् गीता, श्रीमद् भागवत इत्यादि ग्रन्थ भी अप्रामाणिकता का लक्ष्य बन जायेगा । यहाँ निर्विवादित २६२ वचनामृतों से ही भगवान स्वामिनारायण के विशिष्ट दर्शन का पर्याप्त विचार कर सकते हैं ।

शिक्षापत्री भगवान स्वामिनारायण ने लिखी है, इसीलिए प्रामाणिक है इसी प्रकार वचनामृत का ग्रन्थ भी लोया गाँव में स्वतः १८७७ मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीया, शनिवार (९, दिसम्बर, १८२०) के दिन भगवान स्वामिनारायण ने स्वयं देखा है । सम्पादक गण इस बात को वचनामृत में ही कहते हैं कि- 'उस समय नित्यानंदस्वामी ने श्रीजी महाराज को 'वचनामृत' पुस्तक दी । इस पुस्तक को देखकर वे अधिक प्रसन्न हुए ।'^{३१} हाँ ! नित्यानंदस्वामी ने भगवान स्वामिनारायण को जब वचनामृतग्रन्थ अर्पण किया तब '११५' वचनामृत संकलित थे, ऐसा तिथि देखकर निश्चय होता है । इनके पश्चाद्भव वचनामृत

भी इस ११५ की पद्धति से ही प्राप्त होने से इनका भी सर्वतोमुख प्रामाण्य स्वामिनारायण सम्प्रदाय में है, बल्कि तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में शिक्षपत्री से भी अधिक प्रामाण्य है ऐसा निःसंदेह कह सकते हैं ।

वचनामृत के सम्पादक इतने निःस्पृह और प्रामाणिक थे । इसीलिए ग्रन्थ निःसन्देह प्रामाणिक ही है । वचनामृत में भी कभी कोई सन्देह रहे तो समकालीन परमहंसों के ग्रन्थों से उसका समाधान मिलता है । जिन परमहंसों में गुणातीतानंदस्वामी, गोपालानंदस्वामी इत्यादि मुख्य हैं । वे भगवान स्वामिनारायण का रहस्य, रुचि, अभिप्राय, सिद्धान्त जानते थे । भगवान स्वामिनारायण के प्रत्येक वचनों का रहस्य जानते थे । इस प्रकार सम्प्रदाय में प्रामाण्य के मापदण्ड समझकर सम्प्रदाय का रहस्य जानने का प्रयास करना चाहिए ।

४.४ रामानंदस्वामी की रामानुजीय दीक्षा

गुरुपरंपरा के सन्दर्भ में वचनामृत में वर्णन मिलता है कि, - ङ्गुडव्वजी स्वयं रामानंदस्वामीरूप थे । श्रीरंगक्षेत्र में उन रामानंदस्वामी ने स्वप्न में साक्षात् रामानुजाचार्य से वैष्णवी दीक्षा प्राप्त की । इसीलिए रामानंदस्वामी के गुरु रामानुजाचार्य हैं । उन रामानंदस्वामी के शिष्य हम हैं ।^{३२} यह सन्दर्भ हरिचरित्रामृतसागर में भी शब्दभेद से मिलता है । लेकिन मुक्तानंदस्वामी ने 'सम्प्रदायप्रबोध' और रामानंदस्वामी ने 'गुरुपरम्परास्तोत्र' में इस प्रसंग का उल्लेख ही नहीं किया है । इसी प्रकार वचनामृत की प्राचीन हस्तप्रति^{३३} में उपर्युक्त प्रकरण में दो जगह गुरुपरंपरा का उल्लेख है लेकिन रामानुजाचार्य से स्वप्नदीक्षा का प्रसंग नहीं है ।

शिक्षापत्री और वचनामृत के बाद 'सत्संगिजीवन' सम्प्रदाय का अति महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ है । उसमें रामानुजाचार्य की स्वप्नदीक्षा का उल्लेख है लेकिन साथ में शतानंदस्वामी लिखते हैं, कि श्रीरंगक्षेत्र में रामानंदस्वामी के प्रताप को सहन करने में असमर्थ, तेजोद्वेषी वैष्णवजनों ने रामानंदस्वामी का अपमान किया, ताड़न किया । वैष्णव तिलक को नष्ट किया । भगवान के काष्ठमय आसन को तोड़ डाला । श्रीकृष्ण की मूर्ति को उड़ा ले गये । इस उपद्रव से रामानंदस्वामी चलित न हुए, परन्तु भगवद्भजन में अनुकूलता ने देखकर रामानुजाचार्य के मार्ग को त्याग करके भगवान नारायण का भजन करते हुए वृंदावन गये ।^{३४} इस प्रकार रामानुजाचार्य का सिद्धान्त अथवा स्वप्नदीक्षा का महत्त्व इस सम्प्रदाय में नहीं है अथवा अत्यन्त न्यून है ।

४.५ 'मतं विशिष्टाद्वैतं मे' शिक्षापत्री श्लोक का रहस्यार्थ

शिक्षापत्री में विशिष्टाद्वैत को अपना सिद्धान्त कहा है। वह शंकर-रामानुज-वल्लभ इत्यादि आचार्यों की भाँति साधरणरूप से पूर्व-शिष्टाचार ही है, इसके अलावा अधिक कुछ नहीं है। इनके थोड़े हेतु देखेंगे।

१. मत शब्द का 'अभिमत' अर्थ यहाँ अपेक्षित है। मतलब कि, अन्यसम्प्रदायापेक्षया रामानुज मत में अधिक रुची है। हरिवाक्यसुधा-सिन्धु जो वचनामृत के ही भावानुवादरूप से संस्कृतभाषा में लिखा गया है, उसमें कहते हैं, कि- 'प्रायः रामानुजस्वामिसिद्धान्तोऽस्ति मतो मम'^{३५} यहाँ प्रायः पद से अन्य की अपेक्षा अधिक अभिमत है, वही अर्थ स्फुट होता है। वचनामृत लो०१४ में भगवान् स्वामिनारायण ने रामानुज मत में अपनी रुचि है ऐसा कहा है। 'रुचि' शब्द का अर्थ दिलचस्पी है नहीं कि सिद्धान्त। इसी वचनामृत में भगवान् स्वामिनारायण विविध विषयों में अपनी रुचि दिखाकर उपासना का भिन्न ही निरूपण करते हैं। उपासना के निरूपण में गोलोक, वैकुण्ठ, राधा, लक्ष्मी ऐसे किसी तत्त्वों का निरूपण नहीं है।

२. विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय में कथित जीवात्मा-परमात्मा का शरीर-शरीरिभाव सम्बन्ध^{३६} और वचनामृत में निरूपित^{३७} जीवात्मा परमात्मा का सम्बन्ध समान है।

मतलब कि, शरीर-शरीरी सम्बन्ध भगवान् स्वामिनारायण को सर्वथा स्वीकृत है। तब विशिष्टाद्वैत शब्द से जीव-ईश्वर-माया-ब्रह्म विशिष्ट परब्रह्म यह अर्थ भी हो सकता है। भले ही यौगिकार्थ हो, लेकिन जब रुढ्यर्थ का बोध होता है। तब अन्य अर्थ स्वीकार करने का विधान शास्त्र में हैं। इस प्रकार विशिष्टाद्वैत शब्द से भी प्रस्तुत सन्दर्भ में स्वामिनारायणीय सिद्धान्त ले सकते हैं। शिक्षापत्री के भाष्य में स्वामिनारायण दर्शन के अनुरूप ही विचार रघुवीराचार्य ने किया है।

३. 'मतं विशिष्टाद्वैतं मे' यह इस श्लोक का प्रथम पाद है। द्वितीय चरण में भगवान् स्वामिनारायण कहते हैं कि- 'गोलोको धाम चेप्सितम्'^{३८} यदि विशिष्टाद्वैत ही अपना सिद्धान्त है, तनिक भी विशिष्टाद्वैत से भेद नहीं है तब 'गोलोकधाम' कैसे अपना अभिमत बनेगा ? क्योंकि विशिष्टाद्वैतवादी श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में आल्वारों के समय से लेकर अद्यापि पर्यंत वैकुण्ठधाम ही प्रसिद्ध है, गोलोक नहीं। सन्दर्भ द्वारा इस विचार को दृढ़ करें,—

- * 'देवेषु सर्वेषु प्रणमत्सु वैकुण्ठं मन्दिरत्वेन स्वीकृतवान् कुम्भनर्तकः'^{३९}
- * 'श्रीमति वैकुण्ठे दिव्यलोके..... विराजितः'^{४०}
- * 'वैकुण्ठे तु परे लोके श्रीसहायो जनार्दनः ।
उभाभ्यां भूमिनीलाभ्यां सेवितः परमेश्वरः ॥'^{४१}

श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में शरीरत्याग के बाद अन्त्येष्टि संस्कार को 'वैकुण्ठोत्सव' कहते हैं। इस प्रकार वैकुण्ठधाम की प्रसिद्धि श्रीवैष्णवसम्प्रदाय में है। गोलोक का धामरूप से निर्देश ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड के चौथे अध्याय में, गर्गसंहिता के गोलोकखण्ड में,^{४२} गौड़ीयवैष्णव सम्प्रदाय में और निम्बार्क सम्प्रदाय में हैं।

भगवान् स्वामिनारायण वैकुण्ठ और गोलोक को भिन्न ही मानते हैं, नहीं तो गोलोक और वैकुण्ठ की एकता है ऐसा समाधान करके भी 'मतं विशिष्टाद्वैतं मे' श्लोक का समाधान हो सकता था। वे सुख की मीमांसा और तारतम्य का निरूपण करते हुए पशु से लेकर ब्रह्मा के सुख का तारतम्य दिखलाकर आगे कहते हैं, 'उस (ब्रह्मा) से अधिक वैकुण्ठलोक का सुख, उससे अधिक गोलोक का सुख और उससे अधिक भगवान् के अक्षरधाम का सुख है।'^{४३}

इस प्रकार विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त की मान्यता के साथ साथ गोलोक धाम की अभिमति हमें निर्देश करती है कि इतर दर्शनों से विशिष्टाद्वैत में अधिक रुचि है, लेकिन हमारा सिद्धान्त तो भिन्न ही है।

इसी शिक्षापत्री के श्लोक के तृतीय-चतुर्थ चरण में ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की भक्ति का निर्देश करते हैं। रामानुजाचार्य से लेकर अद्यापि पर्यंत किसी श्रीवैष्णव के ग्रन्थों में ब्रह्मरूप होने का विचार नहीं है। गीता के 'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा'^{४४} श्लोक का भी ऐसा निरूपण प्राप्त नहीं होता है, जहाँ 'ब्रह्मभूत' शब्द पड़ा हुआ है। दूसरी और स्वामिनारायण दर्शन के अनेक सदंभों में ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की भक्ति का सिद्धान्त महक उड़ा है। यह ही, अन्य दर्शनों की अपेक्षा से स्वामिनारायण दर्शन की मौलिकता है। इस प्रकार शिक्षापत्री के श्लोक की पूर्वापर-संगति और सविशेष आलोचना से विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त की प्रायिकता ही दिखाई पड़ती है।

४.६ 'भाष्यमाध्यात्मिकं मम' श्लोक का निरूपण

शिक्षापत्री में रामानुजाचार्य के श्रीभाष्य और गीताभाष्य को आध्यात्मिक शास्त्र कहा है।^{४५} जब अपना सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत से भिन्न ही है तब क्यों विशिष्टाद्वैत के ग्रन्थों को आध्यात्मिक भाष्यरूप से कहें ? इस प्रश्न का समाधान देखेंगे।

शिक्षापत्री के भाष्यकार उसका समाधान करते हैं, - 'अत्र स्वाभिमतभगवत्साकारत्वस्य सप्रपञ्चं प्रतिपादितत्वाद् इदमेवास्मदध्यात्म-शास्त्रमिति, भवद्भिरध्येतव्यं श्रोतव्यञ्चेति भावः ।' (यहाँ अपने अभिमत भगवान के साकारभाव का प्रपञ्च के साथ निरूपण होने से यह हमारा अध्यात्मशास्त्र है, उसे भक्तों को पढ़ना चाहिए, सुनना चाहिए ऐसा भाव है ।)

भगवान स्वामिनारायण ने वचनामृतों में कई बार भगवान के साकार स्वरूप का वर्णन किया है । निराकारवादियों के प्रति अपनी अरुचि भी बार-बार प्रकट की है ।^{४६} श्रीभाष्य में^{४७} और श्रीमद्गीताभाष्य में^{४८} रामानुजाचार्य ने साकार स्वरूप का निरूपण किया है । इस अध्यात्म रहस्य से श्रीभाष्य को और गीताभाष्य को अध्यात्मशास्त्र कहा है । इस प्रकार श्रीभाष्य और रामानुजकृत भगवद्गीताभाष्य शाङ्करभष्य अथवा अन्य भाष्यों से अधिक सम्मान्य है । किन्तु ये सम्प्रदाय का रहस्य कहने वाले ग्रन्थ नहीं हैं । शिक्षापत्री में श्रीभाष्य के विरोधी विचार को देखकर इस विचार को दृढ़ करेंगे ।

शिक्षापत्री में यज्ञशिष्टमांसभक्षण का निषेध^{४९} और देवता तथा पितरों के उद्देश से हिंसात्मक योग का निषेध^{५०} कहा है । वचनामृत में^{५१} भी हिंसात्मक यागों को तामस कहकर सम्प्रदाय में निषिद्ध कहे हैं । इसके विपरीत श्रीभाष्यकार 'अशुद्धिमिति चेन्न शब्दात्'^{५२} ब्रह्मसूत्र के भाष्य में कहते हैं, - 'अग्निषोमीयादेः सञ्ज्ञपनस्य स्वर्गलोकप्राप्तिहेतुतया हिंसात्वाभावशब्दात्' (अग्निषोम इत्यादिक यज्ञों में 'बकरी' इत्यादि पशुओं को मारने से उस पशु को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, वह हिंसा नहीं है ।)

इस प्रकार शब्दशः शिक्षापत्री के विरुद्ध ग्रन्थ सर्वथा अध्यात्मशास्त्ररूप से कैसे स्वीकृत हो सकता है ? ऐसे अन्य भी बहुत विचार हैं जो वचनामृत और शिक्षापत्री के साथ समान नहीं हैं, प्रत्युत विरुद्ध हैं

५. विशिष्टाद्वैत-स्वामिनारायणदर्शन साम्य-वैषम्य विमर्श

वि०स०१९८१ में (सन् १९२५) शतानंदस्वामी की अर्थदीपिका टीका, रघुवरीजी महाराज का भाष्य और भगवत्प्रसादजी की भाष्यटीका के साथ शिक्षापत्री बड़े कद में स्वामिनारायण मन्दिर, वरताल से प्रकाशित हुई थी । इस ग्रन्थ के उद्घाटनप्रसंग में विशिष्टाद्वैत वेदान्त के विद्वान्, लक्ष्मीनारायण संस्कृत पाठशाला, वरताल के प्रधानाध्यापक, एम्बार कृष्णमाचार्य उपस्थित थे । उन्होंने इस उद्घाटन सभा में प्रवचन करते हुए कहा था, कि- 'भगवान स्वामिनारायण ने भले ही विशिष्टाद्वैत मत की स्वीकृति यहाँ लिखी, वस्तुतः भगवान स्वामिनारायण का ज्ञानमत अनेक विषयों में भिन्न और अधिक संस्कृत दिखाई पड़ता है ।'^{५३} ऐसा कहकर उन्होंने दोनों सम्प्रदायों के बीच छः भेद कहे थे ।

पण्डित कृष्णवल्लभाचार्य केवल स्वामिनारायण सम्प्रदाय के ही नहीं बल्कि, भारतवर्ष के माने-जाने महान् विद्वान् हैं। उन्होंने 'श्रुतितात्पर्यनिर्णय' ग्रन्थ में 'साद्गुण्यादिविमर्शः' नाम का छोटा प्रकरणग्रन्थ^{५४} लिखा है। इस प्रकरण ग्रन्थ में विशिष्टाद्वैत और स्वामिनारायणदर्शन : इन दोनों के बीच दार्शनिक दृष्टिकोण से विमर्श किया है। उन्होंने ८६ परस्पर भिन्न विषय और १५ समान विषय दिखाये हैं। इन सभी को एकत्रित करके सन्दर्भ के साथ यहाँ देखेंगे

५.१ तात्त्विकभेद

श्रीविशिष्टाद्वैतदर्शन

१. तत्त्वत्रय : जीव, माया, ईश्वर (श्रीभाष्य-२/१/९, सिद्धित्रयम्, तत्त्वत्रयम्, तत्त्वशेखरः, न्यायसिद्धाञ्जन आदि ग्रन्थ)
२. परमात्मस्वरूप चतुर्भुज, श्यामल, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म को और हृदय पर श्रीवत्स तथा वैजयन्ती माला को धारण करनेवाले, पीताम्बरधारी, शेषशय्या पर बिराजमान, शेष-गरुड-विष्वक्सेन इत्यादि मुक्तों से सेव्यमान, श्रीदेवी, भूमिदेवी और नीलादेवी से युक्त, चण्ड-प्रचण्ड वगैरह द्वारपालों से सेवित, वैकुण्ठ में बिराजमान हैं। (श्रीवैकुण्ठगद्य, श्रीसूक्त इत्यादि)
३. वासुदेव ही नारायण, विष्णु हैं। स्वयं अवताररूप होते हैं।
४. ब्रह्मा-विष्णु-शिवान्तर्गत-विष्णु ही परतत्त्व है। (वेदार्थसंग्रह-पृ० २८-२९, चतुःश्लोकी-१, स्तोत्ररत्न-११)
५. भगवान का परमधाम वैकुण्ठ
६. भगवान के धाम में उद्यान, भवन, प्रासाद, फँवारे इत्यादिक शोभा और भोगविलास (वैकुण्ठगद्य)
७. धाम में स्त्री-पुरुषों का सह अस्तित्व अर्थात् लिङ्गभेद (वैकुण्ठगद्य, श्रीप्रश्नसंहिता-२३/१८६, उपेन्द्रसंहिता-२, पृ० ९)
८. धाम में स्थित भगवान और मुक्तों का चतुर्भुज स्वरूप
९. धाम में मुक्तों का शरीर शुद्धसत्त्वमय (न्यायसिद्धाञ्जन, नित्यविभूति, परिच्छेद, लक्ष्मीतन्त्र-१७/५-६, शाण्डिल्यसंहिता-४/१/३९, श्रीप्रश्नसंहिता-४६/२८, बृहद्ब्रह्मसंहिता-१/७/५४/, ३/१/४५, ३/२/७६, ३/२/९८)
१०. धाम में लक्ष्मी मुख्य परिचारक (वैकुण्ठगद्य)
११. धाम में गरुड, विष्वक्सेनादि नित्यमुक्त-अनेक

१२. लक्ष्मी और नारायण दोनों की उपासना-कैङ्कर्य (बृहद्ब्रह्म-संहिता-३/६/५३, लक्ष्मीतन्त्रम्-१७/१५-२२, चतुःश्लोकी-१ श्रीतत्त्वसिद्धाञ्जनम्- पिल्लैलोकाचार्य-मुमुक्षुपडी- २/४०-४४)
१३. लक्ष्मी पत्नी हैं, वैकुण्ठ की अधिष्ठात्री देवी हैं । (वैकुण्ठगद्य)
१४. लक्ष्मी पुरुषाकार रूप जीवों के मोक्ष में माध्यम बनती हैं । (मुकुक्षुपडी-२/८, वेदान्तविचारमाला-१/६७)
१५. गुरुरूप से पृथ्वी पर परमात्मा का प्रागट्य लक्ष्मी द्वारा है, ऐसा कोई विधान नहीं है ।
१६. अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड निरूपण श्रीभाष्य (१/१/२) समय के ग्रन्थों में नहीं है, वेदान्तदेशिक के समय में है । (स्तोत्ररत्न-भाष्य-१४, पील्लैलोकाचार्य तत्त्वत्रयम् पृ० २७८) फिर भी उत्पत्तिप्रक्रियानिरूपण स्पष्ट नहीं है ।
१७. आतिवाहिक द्वारा मार्गदर्शित जीवात्मा विरजा नदी में स्नान के समय लिङ्ग शरीर का त्याग करता है । (श्रीभाष्य-४/३, अधिकरणसारावली)
१८. ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करनेवाले ईश्वरों में से विष्णु स्वयं आराध्य नारायण हैं । अन्य जीव कक्षा के हैं ।
१९. जीव तत्त्व के तीन भेद स्वीकृत हैं, नित्य, मुक्त और बद्ध । (न्यायसिद्धाञ्जन-जीवपरिच्छेद)
२०. देहत्याग के बाद मुक्त आतिवाहिक के साथ वैकुण्ठ लोक में जाता है । वहाँ विरजा स्नान से लिङ्ग-भङ्ग, अमानवकरस्पर्श से चतुर्भुज शरीर प्राप्ति, भगवान के प्रासाद में चंड-प्रचंड द्वारा सत्कार, लक्ष्मी का पुरुषकार और बाद में परमात्मा उसे प्रेम से निरीक्षण करके अपनी गोद में लेते हैं । (यतीन्द्रमतदीपिका, अष्टमोऽवतार)
२१. जीवन्मुक्तनिषेध (श्रीभाष्य)-१/१/४)
२२. पुराणों में विष्णुपुराण का प्राधान्य
२३. साधना में प्रपत्ति की प्रधानता
२४. वेदान्त, आगम (पञ्चरात्र वैखानस) और द्रविड प्रबंध का प्राधान्य
२५. विशिष्टाद्वैत दर्शन नाम से प्रसिद्ध

श्रीस्वामिनारायणदर्शन

१. तत्त्वपञ्चक : जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म, परब्रह्म (वचनामृत ग०प्र०-७, ग०अं० १०, वेदरस-पृ० १७७, सत्संगिजीवन-१/५७/२७-३७, ४/२१/५४)
२. अक्षरधाम में दिव्य सिंहासन पर बिराजमान, समानाकारवाले मुख्यपरिचारक मूर्तिमान् अक्षरब्रह्म और अनंत मुक्तों से परिसेवित द्विभुज, अतिशय मनोहर, अतिसौम्य, श्याम होने पर भी श्वेतिमा से अधिक तेजस्वी, स्वयं भगवान् स्वामिनारायण (वचनामृत गढ़डा मध्य-१३, ग०प्र०-२१, सेतुमाला-५९/५, ६९/४९, सा०-१७/१९, दु०मा०-५२/५३)
३. भगवान् स्वामिनारायण सभी अवतारों से भिन्न और परे हैं । (वचनामृत ग०म०-९, ग०अं०-३८, स्वा०वा०-५/१५, ६/३४ श्रीहरि-लीलाकल्पतरु-३/२०/१-८, पुरुषोत्तममाहात्म्य-१४, गोपालानंदस्वामीनी वातो, पृ० १६४)
४. ब्रह्मा-विष्णु-महेश यह त्रिमुर्ति प्रत्येक ब्रह्मांड में अवस्थित है, वह परमात्मा से न्यून और भिन्न है । (वचनामृत पं०४, श्रीवासुदेव-माहात्म्य-२४/१३, स्वा०वा०-५/१७७, २/१२४)
५. भगवान् का परमधाम अक्षरधाम (वचनामृत पं०-१, म०प्र०-१२, ६३, ६४, ग०म०-४२, ३० इत्यादि ।)
६. भगवान् के धाम में भगवान्, उनका सिंहासन, अक्षरब्रह्म और मुक्त का ही वर्णन, परमात्मा का ही दर्शन सुख (वचनामृत ग०प्र० २१, म०-१३, लो०-१४)
७. धाम में स्त्री-पुरुषादि लिङ्गभेद से विजातीय पुरुषोत्तम समानाकार मुक्त (वेदरस-पृ० १४५, स्वा०वा०-७/२१)
८. अक्षरधाम में परब्रह्म, अक्षरब्रह्म और मुक्तों का द्विभुज स्वरूप (वचनामृत म.-१३, लो०-१४, अं०-३८)
९. धाम में मुक्तों की निर्गुण ब्राह्मी तनु अथवा भागवती तनु (वचनामृत ग०प्र०-३७, ६४, वचनामृत सा०-१४, का०-१, ग०म०-१३, लो०-१८)
१०. धाम में अक्षरब्रह्म मुख्य परिचारक (दुर्गपुर महात्म्य इत्यादि क्रमाङ्क-३ के सन्दर्भ)
११. अक्षरब्रह्म ही नित्य मुक्त अन्य संजातमुक्त

१२. ब्रह्मरूप हो कर परब्रह्म की सेवा (शिक्षा १२०, वचनामृत लो०-७)
१३. अक्षरब्रह्म स्वयंधामरूप भी है, और सेवकरूप भी है (वचनामृत ग०प्र०-२१, और क्रमाङ्क-३ के सन्दर्भ)
१४. अक्षरब्रह्म मोक्ष में माध्यम तो है लेकिनस्वयं भी मोक्षप्रदान में समर्थ है । (वचनामृत ग०प्र० २७)
१५. परब्रह्म अक्षरब्रह्मात्मक संत द्वारा पृथ्वी पर सदा प्रगट रहते हैं । (वचनामृत ग०प्र०-७१, प्र०-२७, वर०-१९)
१६. प्रकृतिपुरुष का स्पष्टनिरूपण, उत्पत्तिप्रक्रिया में अनन्ताकोटि ब्रह्माण्डवाद का स्पष्ट निरूपण प्राप्त होता है । (सत्संगिजीवन-४/६८ वचनामृत ग०प्र०-१२)
१७. कारणशरीररूप माया को इस लोक में ही त्याग कर मुक्ति का अनुभव कर सकते हैं । (वचनामृत का०-१२, म०-६६)
१८. ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति-स्थिति प्रलय करने में सहायक ईश्वर तत्त्व भिन्न हैं । प्रधानपति पुरुष से लेकर ब्रह्मा-महेश तक भेद हैं । (क्रमाङ्क-१ के सन्दर्भ और पं०-२, म०-३१, सा०-५, प्र०-७ इत्यादि)
१९. जीव तत्त्व में दो भेद हैं, बद्ध और मुक्त । तमाम जीव जीवदशा में समान है । मुक्त दशा में मुक्त हैं ।
२०. देहत्याग के समय स्वयं परमात्मा ही दिव्य विमान और अनंत मुक्तों के साथ पृथ्वी पर आकर मुक्त को ब्राह्मी तनु संपन्न बनाकर अक्षरधाम में ले जाते हैं । (गोपालानंदस्वामीनी वातो-पृ० ३६८, सं० बालकृष्णानंद स्वामी, श्रीहरिचरित्रम्- ३/१२/२०, २/३/२८, भक्त चिंतामणि-६८/९ इत्यादि)
२१. जीवन्मुक्तिस्वीकृति (वचनामृत सा०-९, म०-४८, ग०अं०-२/७, अम०-२, वेदरस-पृ० १४९)
२२. स्कन्दपुराणान्तर्गत वासुदेवमाहात्म्य की प्रधानता
२३. एकान्तिक धर्म की प्रधानता, जिसका एक अङ्ग प्रपत्ति भी है ।
२४. साङ्ख्य-योग-पञ्चरात्र-वेदान्त और वचनामृत का प्राधान्य
२५. अक्षरब्रह्म-परब्रह्म दर्शन नाम से प्रसिद्ध

५.२ सांप्रदायिक-धार्मिक भेद

इन भेदों के सिवा सांप्रदायिक धार्मिक दृष्टिकोण से बहुत भेद भी हैं जैसे,-

श्रीविशिष्टाद्वैतदर्शन

१. आश्रमव्यवस्था, संन्यासी- चतुर्थाश्रम परम्परा
२. प्रसिद्ध मंत्र-
 १. ॐ नमो नारायणायाय
 २. ॐ श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये
 ३. ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
३. श्रीवैष्णवसम्प्रदाय नाम से प्रसिद्ध
४. श्वेततिलक, मध्यम में रक्तवर्ण की रेखा
५. द्रविड शैली के मन्दिर
६. संन्यासी के मठ की पद्धति भिन्न
७. आश्रितों के लिए 'श्रीवैष्णव' नाम से प्रसिद्धि
८. चौहत्तर (७४) सिंहासनाधीश और मठाधीश द्वारा आश्रितों को दीक्षा
९. पञ्चकाल प्रक्रिया और अन्य नित्य पूजन पद्धति भिन्न
१०. शिष्यदीक्षाविधानप्रथा भिन्न

श्रीस्वामिनारायणदर्शन

१. आश्रमव्यवस्था, त्यागाश्रम में ब्रह्मचर्याश्रम साधुपरम्परा
२. प्रसिद्ध मंत्र-
 १. स्वामिनारायण
३. श्रीस्वामिनारायण सम्प्रदाय नाम से लोक में प्रसिद्धि
४. पीततिलक और मध्य में रक्तवर्ण का चन्द्रक
५. नागरशैली के मन्दिर
६. साधुओं के रहने की धर्मशाला का विशिष्ट प्रकार
७. आश्रितगण 'हरिभक्त' अथवा 'सत्संगी' शब्द से प्रसिद्ध
८. आचार्य अथवा साधुओं द्वारा दीक्षा
९. नित्यपूजा पद्धति भिन्न
१०. दीक्षा भेद, साधारण दीक्षा, विशेष दीक्षा, इन दीक्षाओं का विधान सत्संगिजीवन अनुसार

५.३ विशिष्टाद्वैत अभिमति एक शिष्टाचार

इतने व्यापक स्वरूप में दोनों सम्प्रदायों में भेद देखकर और सम्प्रदाय के सभी ग्रन्थ देखने पर विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय की अभिमति एक शिष्टाचार मात्र है। क्योंकि, सम्प्रदाय के मूल ग्रन्थों में सभी जगह तत्त्वपञ्चक की बात मुख्य रूप से कही है, भगवान् स्वामिनारायण के पृथ्वी पर अवतरण से पूर्व भी पाँच तत्त्वों की बात मिलती है। भगवान् स्वामिनारायण की पूर्वपरंपरा में आनंदमुनि हुए। जिन्होंने गुरुप्रसाद नामक संस्कृत ग्रन्थ वि०सं० १४९० में लिखा है। उसमें आनंदानंदस्वामी ने अपने परमगुरु आत्मानंदस्वामी का जीवनचरित्र लिखा है। आत्मानंद स्वामी गोविन्दानंद को जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म और परब्रह्म का उपदेश देते हैं।^{५५}

भगवान् स्वामिनारायण नीलवठवर्णी वेष से जब लोज गाँव में रामानंदस्वामी के आश्रम में आते हैं, तब मुक्तानंदस्वामी से प्रश्न पूछते हैं, जिस प्रश्न में जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म और परब्रह्म के लक्षण ही विषय था। मुक्तानंदस्वामी कहते हैं, कि-‘गुरु रामानंदस्वामी के पास सीखा हूँ वैसा उत्तर कहूँगा’ ऐसा कहकर पाँच तत्त्वों का निरूपण किया है, जो निरूपण संप्रदाय के प्रमुख चरित्रग्रन्थ - सत्संगिजीवन, सत्संगिभूषण, हरिचरित्रामृतसागर, भक्तचिंतामणि, हरिलीलाकल्पतरु इत्यादि ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

हाँ ! कदाचित् यह बन सकता है, कि विशिष्टाद्वैत का आश्रय लेने का विचार पीछे से इस सम्प्रदाय के साथ जुड़ा गया हो। इस विचार में संप्रदाय के प्रारंभ काल से प्राप्त इन पाँच तत्त्वों के पूर्वकथित सन्दर्भ कारणभूत हैं ही, साथ साथ शिक्षापत्री का प्राचीन लेख भी कारणभूत है। वि०सं०-१८८२ में २१२ श्लोकात्मक शिक्षापत्री लिखने से पहले वि०सं०-१८७९ में १४५ श्लोक की शिक्षापत्री लिखी थी, जो प्रकाशित भी हुई है^{५६} और हस्तप्रत के रूप में भी संगृहीत है। इस शिक्षापत्री में विशिष्टाद्वैत की अभिमति रामानुजाचार्य के श्रीभाष्य और गीताभाष्य की आध्यात्मिक ग्रन्थ रूप से मान्यता और तत्त्वपत्र का निरूपण ही प्राप्त नहीं होता है।

परमहंसों के ग्रन्थों की प्रकाशन योजना में भी विशिष्टाद्वैती विद्वान की सहायता के कारण भी विशिष्टाद्वैत का माहात्म्य ज्यादा प्रक्षिप्त हो गया है। शाण्डिल्यभक्तिसूत्रभाष्य ग्रन्थ की पूर्वभूमिका में प्रकाशित नित्यानंदस्वामीकृत श्रीहरिप्रार्थना में कहा है, ‘जीवेशाक्षरकालसन्नियमन ।’ (४) (जीव, ईश्वर, अक्षरब्रह्म और काल के नियमन कर्ता परमेश्वर) वही नित्यानंदस्वामी तीन तत्त्वों का निरूपण तो सैद्धान्तिकरूप से भी कभी नहीं करेंगे, लेकिन एम्बार कृष्णामाचार्य के नेतृत्व में शाण्डिल्य सूत्र के नित्यानंदस्वामीकृत

भाष्य का सम्पादन होने पर ग्रन्थ में 'मायाजीवेशानां स्वरूपस्वभावनिरणयमुक्त्वा'^{५७} (माया, जीव और ईश्वर के स्वरूप स्वभाव का निरणय कहकर) ऐसा लिखा गया है। मतलब कि, नित्यानंदस्वामी के ग्रन्थ में पीछे से ऐसी बात जोड़ी गई हो ऐसी सम्भावना बलवत्तर है।

इस रूप से स्वामिनारायण सम्प्रदाय में प्रथम से ही पाँच तत्त्वों का निरूपण था, ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की उपासना करना यह ध्येय था, लेकिन यह सिद्धान्त बाद में प्रवृत्त हुआ ऐसी कोई शंका में तथ्य नहीं है, प्रत्युत सम्प्रदाय के विकास के बाद वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार अधिक होने से 'मतं विशिष्टाद्वैतं मे' इत्यादि पंक्ति सम्प्रदाय में दिखाई पड़ती है।

जैसे श्रीवल्लभाचार्यप्रवर्तित सम्प्रदाय में 'विष्णुस्वामिमतवर्तित्व' वगैरह सन्दर्भ एक पक्ष में, एवं दूसरी ओर विष्णुस्वामी प्रवर्तित भक्ति तामस और वल्लभाचार्य प्रवर्तित निर्गुणभक्ति-ऐसे विरोधी सन्दर्भों के शमन के लिए VISNUSVAI AND VALLABHACHARYA यह जी.एस.भट्ट का लेख All India oriental confrence, 1933, Baroda-से जो प्रस्तुत था उसमें सामाधान करते हुए कहते हैं कि,-.....

हाँ ! विशिष्टाद्वैतदर्शन औश्र स्वामिनारायण दर्शन के सन्दर्भ में, विष्णुस्वामी और बल्लभाचार्य के सिद्धान्तगत विरोधशमन के विचार से थोड़ा भेद यह है कि, वल्लभाचार्य के समय विष्णुस्वामी का मत शिथिल हो गया था। उनके सिद्धान्त के थोड़े सन्दर्भ के सिवा कोई साहित्य भी नहीं था। जबकि, स्वामिनारायणदर्शन के उद्गम के समय विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय न केवल दक्षिण भारत में किन्तु पूरे भारत में प्रसिद्ध था, विशिष्टाद्वैत के ग्रन्थ भी बहुत प्रसिद्ध थे। लेकिन पाँच तत्त्वों का सिद्धान्त और स्त्री-पुरुष मर्यादा इत्यादि अपने विचार के अनुरूप व्यवस्था श्रीवैष्णव संप्रदाय में नहीं देखकर वहाँ से चल पड़े। गुजरात में रामानंदस्वामी के सम्प्रदाय में अपने विचार के अनुरूप सिद्धान्त देखकर वहाँ ही स्थिर होकर, सम्प्रदायप्रवर्तन किया

६. श्रीकृष्ण की उपास्यता का विमर्श

शिक्षापत्री में और वचनमृत के कुछ सन्दर्भ में भगवान श्रीकृष्ण का ही सम्प्रदाय के इष्टदेवरूप में निरूपण प्राप्त होता है। यहाँ भी पूर्वपरंपरा प्राप्त ही निरूपण समझना चाहिए।

आत्मानंदस्वामी (१) से लेकर रामानंदस्वामी तक सभी आचार्य श्रीकृष्ण की इष्टदेव के रूप में उपासना करते थे ऐसे सन्दर्भ मिलते हैं।^{५८}

भगवान स्वामिनारायण के माता-पिता भी श्रीकृष्णभक्त थे । गुजरात में स्वामिनारायण सम्प्रदाय के प्रारंभ काल में अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की संख्या बहुत थी । आगन्तुक अनुयायियों में अपने आपको 'सर्व अवतार से पर अवतारी' कहने पर सम्प्रदाय में और बाहर अपना कार्य दुष्कर बन जाता । क्योंकि, समाज में अप्रचलित नये, अनसुने विषय को स्वीकारना और प्राचीन, वृद्ध-परिसेवित सिद्धान्त का त्याग करना मानवमन के लिए दुष्कर कार्य है । इस हेतु को देखकर भगवान स्वामिनारायण ने कहीं कहीं राधाकृष्ण की बात की थी । प्रारम्भ में तो प्रतिदिन श्रीकृष्ण की आराध्यता भी थी । साथ साथ कहीं कहीं सन्दर्भों में स्वयं रामानंदस्वामी ने भी श्रीकृष्ण से अधिक भगवान स्वामिनारायण को कहा था । ऐसे सन्दर्भ देखें, -

लालजी नामक बड़ई भक्त और रामानंदस्वामी के संवाद लिखते हुए आचार्य रघुवीरजी महाराज कहते हैं, —

स तं पुनरथाप्राक्षीदित्थं विस्मितमानसः ।

अस्माकमिष्टदेवेन स किं कृष्णेन सन्निभः ॥

स इत्यथावदद् भक्तं मत्तः कृष्णो यथाधिकः ।

तथाऽत्यधिकः एवेशात् तस्मादपि स विद्यते ॥

रामानंदस्वामी ने अपने भगवद्धाम गमन के बाद अपने प्रधान शिष्य मुक्तानंदजी को दिव्यदर्शन देकर कहा था, जो मुक्तानंदस्वामी के शिष्य आधारानंदस्वामी ने हरिचरित्रामृतसागर ग्रन्थ में लिखा है ।

प्रगट प्रमान रामानंदस्वामी, आगे आये उभे अंतरजामि ।

चन्दन चरचित गौर शरीरा, बोले मुनि से हरनकुं पिरा ॥

हमेरे प्रतित न तुमकुं लेशा, बालक ज्युं करत मन क्लेशा ।

हमारे स्वामि (इष्टदेव श्रीकृष्ण) के स्वामि (सहजानंदस्वामी) हे एहु,

सत्य करिके मानो तुम तेहु ॥^{६०}

भगवान स्वामिनारायण स्वयं भी अपनी महिमा सभी में कहते थे । जो सन्दर्भ शिक्षापत्री रचना के पहले और बाद के वचनमृतों में प्राप्त भी होता है । संवत् १८७८ में गढ़पुर में अपने निश्चय की बात करते हुए भगवान स्वामिनारायण कहते हैं, - 'अपने को साक्षात् प्राप्त भगवान के स्वरूप को सदा दिव्य साकारमूर्ति तथा समस्त अवतारों का कारण अवतारी ऐसा समझना चाहिए । ऐसा न जानकर उसके निराकार तथा अन्य अवतार समान जायें तो उनका द्रोह किया कहा जाता है ।'^{६१}

भगवान स्वामिनारायण स्वसम्मुख बैठे हुए भक्तजनों को सम्बोधित करके 'अपने को साक्षात् प्राप्त' शब्द से अपनी ही बात करते हैं। आपको दूसरे अवतार (राम-कृष्णादि) समान जाननेवाला भक्त आपका द्रोही बनता है। कोई भी अनुयायी ऐसे विधान के बाद अपने इष्टदेव को छोड़कर दूसरे अवतारों का इष्टदेव रूप से भजन नहीं करेगा।

संवत्-१९७८ श्रावण-अमावस्या के दिन गढ़पुर में कहते हैं,- 'अक्षरातीत जो पुरुषोत्तम भगवान हैं वे ही समस्त अवतारों के अवतारी हैं और सभी अवतार पुरुषोत्तम में से प्रकट होते हैं तथा पुरुषोत्तम में लीन होते हैं।'^{६२} आगे इस पुरुषोत्तम के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहते हैं,- 'यह बात भी समझ लें, कि- 'तेजपुंज में जो मूर्ति है, वे ही ये प्रत्यक्ष महाराज हैं' इस प्रकार जानना चाहिए।.....यह तो एक ऐसी जीवंत वार्ता है, कि देह रहने तक भी इसे प्रतिदिन करते रहना चाहिए तथा देहत्याग के बाद भी भागवती तनु द्वारा भी इसी बात को करना है। हमने आपको जो यह बात बताई है, वह समस्त शास्त्रों का सिद्धान्त है तथा अनुभव में भी इस बात की दृढ़ता है। यदि हमने इसे प्रत्यक्षरूप से नहीं देखा हो तो हमें समस्त परमहंसों की कसम है।'^{६३}

इतनी प्रभावशाली, माहात्म्यसभर बात सुनकर सब आश्रित उनका ही पूजन-ध्यान-अर्चन करते हैं, अन्य राम-कृष्णादि ईश्वरों का नहीं।

इस वचनामृत के सम्पादकों ने भी अंत में लिखा,- 'इस प्रकार श्रीजी महाराज ने अपने भक्तजनों को शिक्षा देने के लिए अपने पुरुषोत्तम होने की वार्ता परोक्षरूप से कही। यह बात सुनकर समस्त साधुओं तथा, हरिभक्तों ने यह मान लिया कि, 'तेज:पुंज में जिस मूर्ति के रहने की जो बात कही गयी है, वे प्रत्यक्ष प्रमाण श्रीजीमहाराज ही हैं'।'^{६४}

इस प्रकार सर्वावतारी भगवान स्वामिनारायण का आश्रय छोड़कर दूसरे अवतारों का आश्रयण का विचार दृढ़ आश्रितों को कभी नहीं होता है। शिक्षापत्रीलेखन के बाद भी एकबार आदेश के वक्त भगवान स्वामिनारायण ने कहा कि,- 'प्रत्यक्ष पुरुषोत्तम भगवान अक्षरादि के नियन्ता तथा ईश्वरों के भी ईश्वर हैं और सब कारणों के भी कारण हैं, वे सर्वोपरि हैं और समस्त अवतारों के अवतारी हैं। ये भगवान ही आप सबके लिए एकान्तिक भाव से उपासना करने योग्य हैं, इन भगवान के इससे पहले अवतार हो चुके हैं और वे भी नमस्कार करने योग्य हैं तथा पूजन करने योग्य हैं।'^{६५}

प्रस्तुत वचनामृत में एकान्तिक भाव से उपासना करने योग्य और नमस्कार-पूजन योग्य ऐसे दो भेद कहते हैं। भगवान स्वामिनारायण प्रत्यक्ष पुरुषोत्तम ही सम्मुख बैड़े हुए श्रोताओं के लिए उपासनीय हैं, अर्थात् अपने आपको ही उपास्य दिखलाते हैं,

अन्य अवतारों को पूजनीय और नमस्कार करने योग्य कहते हैं। इतनी रहस्यमय बात सुनकर भी कोई भगवान स्वामिनारायण को छोड़कर दूसरे स्वरूप को इष्टदेव समझता हो तो वह स्वामिनारायण सम्प्रदाय के आश्रित कैसे हो सकता ?।

इन सभी सन्दर्भों को देखकर 'श्रीकृष्ण को इष्टदेव रूप से समझना' यह शिक्षापत्री का सन्दर्भ साधारणवाद ही लगता है। जैसे भगवान श्रीकृष्ण ने शिव की उपासना से सुदर्शन चक्र प्राप्त किया ऐसी हरिवंश पुराण की कथा^{६६}, श्रीरामचन्द्रजी ने रामेश्वर महादेव की प्रतिष्ठा-पूजन से रावणहत्या के पाप का प्रयाश्चित किया।^{६७} ऐसे सन्दर्भों को वल्लभ, निम्बार्क, चैतन्य और रामानंद सम्प्रदाय के आश्रित गौण समझते हैं। नहीं तो राम और कृष्ण से पर शिवतत्त्व की स्थापना होगी, और वैष्णव मत को छोड़कर शैव ही कहलायेंगे। इस प्रकार शिक्षापत्री के श्रीकृष्ण की इष्टदेवरूपता स्वामिनारायण सम्प्रदाय में भगवान स्वामिनारायण के समय से ही गौण है।

आज भी स्वामिनारायण का ही पूजन, वन्दन, उपासना, भक्ति सब कोई आश्रित करते हैं। इस प्रत्यक्ष साधना प्रणाली में निरत आश्रितों को अपने इष्टदेव के शब्दों पर विश्वास होगा, तब ही इष्टदेव का भजन करते हैं।

७. राधा सहित कृष्ण की बजाय अक्षर सहित पुरुषोत्तम

इस की स्पष्टता

भारतीय दर्शन का अंतिम लक्ष्य है, मुक्ति। भगवान स्वामिनारायण मुक्ति का; प्रभावशाली, अवश्यकर्तव्य, अवश्यज्ञातव्य उपाय कहते हैं कि, - 'जैसा परोक्ष भगवान के राम-कृष्णादि अवतारों का माहात्म्य जानता है तथा नारद, सनकादिक, शुकजी, जड़भरत, हनुमान, उद्धव- इत्यादि जो परोक्ष साधुजन उनका जैसा माहात्म्य जानता है वैसा ही प्रत्यक्ष ऐसे जो भगवान तथा उन भगवान के भक्त साधुजन उनका माहात्म्य समझे उसको कल्याण के मार्ग में कुछ भी समझना बाकी रहा नहीं है, सो यह वार्ता एक बार कहने से समझिए अथवा लाखबार कहने पर समझिए, आज समझिए अथवा लाख वर्ष बाद समझिए, पर यह बात समझने से ही छुटकारा है।'^{६८}

इस मुक्ति के उपाय में भगवान स्वामिनारायण परोक्ष राम-कृष्णादिक अवतारों और उनके भक्तों को दृष्टान्त रूप से रखकर प्रत्यक्ष ऐसे अपने आप और अपने ही भक्तों का माहात्म्य कहते हैं। भगवान ने यहाँ प्रत्यक्ष भगवान अर्थात् खुद का और प्रत्यक्ष भक्त गुणातीतानंदस्वामी का ही निर्देश किया है, ऐसा ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज अपने उपदेश में कहते थे। इस प्रकार राधा अथवा लक्ष्मीरूप परोक्ष भक्तों के बजाय प्रत्यक्ष भक्त

की स्थापना भगवान का अनुमत है, अनुमत है इतना ही नहीं किन्तु लाखबार और लाख साल के बाद यही अवश्य कर्तव्यरूप से कहते हैं। इसीलिए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज ने भगवान स्वामिनारायण के साथ गुणातीतानंदस्वामी की मूर्तिप्रतिष्ठा की, जिससे लाखों मुमुक्षु एक ही जन्म में यह सिद्धान्त समझकर ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर सकें।

यदि कोई कहे कि,- 'यहाँ प्रत्यक्ष भक्तरूप में गुणातीतानंदस्वामी का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है। शास्त्रीजी महाराज ने तो कालान्तर में यह स्पष्टता की, मतलब की, कालान्तर में ही यह सिद्धान्त प्रकट हुआ।'

इसके उत्तररूप भागवत का सन्दर्भपूर्वक इस वल्लभसम्प्रदाय का दृष्टान्त दे सकते हैं।

'निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः।'^{६९} इस भागवत श्लोक में 'राधस्' शब्द से राधिकाजी का उल्लेख है, ऐसा सम्प्रदाय के विद्वानों का मत है। वल्लभभाचार्य ने सुबोधिनी में तो 'राधस्' शब्द से राधाजी का उल्लेख नहीं किया है। सुबोधिनी में राधस् वाच्य सिद्धि का निरूपण है, फिर भी सभी वैष्णव विद्वान यहाँ राधाजी का उल्लेख क्यों मानते हैं? सम्प्रदाय के विश्वस्त महानुभवों से ही 'राधाजी का उल्लेख है' ऐसा समझकर स्वीकारते हैं, बस! वैसा ही प्रत्येक सम्प्रदाय में बनता है। अक्षरब्रह्म गुणातीतानंदस्वामी ही उत्तम भक्त थे, भगवान स्वामिनारायण के अध्यात्मभाव से सन्निकट थे ऐसे सैकड़ों सन्दर्भ भी इस सिद्धान्त के साक्षी हैं। यहाँ इसको थोड़ा विस्तार के साथ देखेंगे।

७.१ गुणातीतानंदस्वामी उत्तम भक्त

भगवान स्वामिनारायण ने उपर्युक्त सन्दर्भ में परोक्ष रामकृष्णदि अवतारों और उनके भक्तों के माहात्म्य के समान प्रत्यक्ष का ही माहात्म्य समझना - ऐसा कहकर प्रत्यक्ष की उपासना पर बल दिया है। प्रत्यक्ष भगवान तो आप स्वयं थे। प्रत्यक्ष उत्तम भक्त कौन? इस प्रश्न के उत्तर में श्रेष्ठता की थोड़ी व्याख्या करेंगे।

अध्यात्म भाव से भगवान के अत्यंत निकट हो और भगवान ने ही मोक्ष मार्ग में जिसकी अत्यंत आवश्यकता निरूपित की हो ऐसे व्यक्ति को ही यहाँ उत्तम भक्त समझना चाहिए।

श्रीगुणातीतानंदस्वामी सम्प्रदायस्वीकृत पाँच तत्त्वों में से चतुर्थ तत्त्व अक्षरब्रह्म के साक्षाद् अवतार थे। अक्षरधाम, अक्षर, ब्रह्म, अक्षरब्रह्म, ब्रह्ममहोल, चिदाकाश इत्यादि शब्दों से वचनानामृत में इस तत्त्व का ही निरूपण है, ऐसा भगवान स्वामिनारायण,

गुणातीतानंदस्वामी, गोपालानंदस्वामी, आचार्यविहारीलालजी इत्यादि बहुत से विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में लिखा है।^{१७०}

वचनामृत में कथित अक्षरब्रह्म तत्त्व की महिमा गुणातीतानंदस्वामी की ही है। भगवान स्वामिनारायण कहते हैं, कि-‘भगवान जीव के कल्याण के लिए जब मूर्ति धारण करते हैं तब वे अपने अक्षरधाम एवं चैतन्यमूर्ति पार्षदों तथा समस्त निजी ऐश्वर्य के साथ ही पधारते हैं।^{१७१} इस सन्दर्भ के अनुसार भगवान स्वामिनारायण के इस ब्रह्माण्ड में अवतरण (वि.सं.-१८३७) के चार साल के बाद (वि.सं.-१८४१) गुणातीतानंदस्वामी भी इस पृथ्वी पर आये।

स्वयं अक्षरब्रह्म गुणातीतानंदस्वामी भी पुरुषोत्तम के प्रति अपने स्नेह का वर्णन करते हुए कहते हैं,- ‘मुझे जो हजारों प्रकार की क्रियाएँ करवानी पड़ती हैं; किन्तु क्रियाओं के कराते समय यदि एक निमेष आँख झपक जाय, उतने पल के लिए भगवान की विस्मृति हो जाय, तब हमारा तालू ही फट जायेगा। जैसे मछली अपना हलन चलन एवं क्रीडा जल में करती है, उसी प्रकार हम भी बोलने चलने की क्रियाएँ करते हैं, किन्तु भगवान को छोड़कर कभी कुछ नहीं करते।^{१७२}

भगवान पुरुषोत्तम नारायण के साथ अक्षरब्रह्म का अटूट सम्बन्ध है। जहाँ भगवान की मूर्ति है वहाँ अक्षरब्रह्म का मध्य है^{१७३} अन्य जीव, ईश्वर और मुक्तों की अपेक्षा अधिक और पूर्णरूप से भगवान अक्षरब्रह्म में ही रहते हैं।^{१७४} अक्षरब्रह्म संत भगवान के मुख्य परिचारक रूप से सर्वाधिक श्रेष्ठ सेवक हैं।^{१७५} अक्षरब्रह्म के मनन से ही जीवात्मा ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की भक्ति के अधिकारी बनते हैं। अक्षरब्रह्म की इतनी अपार महिमा है।

अक्षरब्रह्म भक्त और भगवान की सेवा समानता से करनी चाहिए तब ही अनेक जन्म की कसर नाश होती है। नित्यानंदस्वामी के साथ प्रश्न-उत्तर में यह बात भगवान स्वामिनारायण कहते हैं। नित्यानंदस्वामी ने प्रश्न पूछा के, ‘यह कसर मिट जाने पर कनिष्ठ भक्त को उत्तम भक्त का स्थान मिल पाता है या नहीं?’ श्रीजीमहाराज बोले कि, ‘जैसे भगवान की मानसी पूजा की जाती है वैसे ही जो उत्तम हरिभक्त हो, उसकी भगवान की प्रसादी (भगवान को समर्पित पदार्थ) से भगवान के साथ में मानसी पूजा करनी चाहिए। जिस प्रकार भगवान के लिए थाल परोसा जात है, वैसे ही भगवान के उत्तम भक्त के लिए भी थाल परोसकर भोजन करना चाहिए। जिस प्रकार भगवान के लिए पांच रूपये खर्च किये जाते हैं वैसे ही ऐसी रकम बड़े संत के लिए खर्च करनी चाहिए। उसी

प्रकार जो पुरुष भगवान तथा उत्तम लक्षणवाले संत की प्रगाढ़ प्रेमपूर्वक एकसमान सेवा करता है, वह दो जन्मों, चार जन्मों, दस जन्मों और एकसौ जन्मों द्वारा भी उत्तम भक्त होनेवाला हो, वह इसी जन्म में उत्तम भक्त हो जाता है। ऐसी भगवान तथा उन भगवान के भक्त की एकसमान सेवा करने का फल है।^{७७}

वचनामृत ग.म.-२१ में प्रत्यक्ष भक्त की बात की है इसके साथ इस वचनामृत का अनुसंधान करने पर अनेक जन्म की कसर एक जन्म में अक्षरब्रह्म गुणातीतानंदस्वामी से ही मिट सकती है। न कि राधाकृष्ण की उपासना से। स्वामिनारायण सम्प्रदाय का यह सिद्धान्त शास्त्रसंमत है। भगवान स्वामिनारायण का अनुभूत है। इस प्रकार सौ जन्म की कसर नाश करने के लिए अक्षर सहित पुरुषोत्तम की सेवा आवश्यक है। सेवा के लिए दोनों की मूर्तिप्रतिष्ठा भी आवश्यक है।

भगवान स्वामिनारायण ने भारतीय सनातन शास्त्रों से ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म के भजन का एक विशिष्ट सिद्धान्त दिया। ब्रह्मरूप भक्त को कोई विघ्न परेशान नहीं करते।^{७८} ब्रह्मरूप भक्त की स्वर्ण और स्त्री में वासना नष्ट हो जाती है^{७९} ब्रह्म को जानना ही मोक्षमार्ग की चाभी है,^{८०} : इन सभी सन्दर्भों में निरूपित ब्राह्मीस्थिति जीवों और ईश्वरों को देने के लिए ही भगवान स्वामिनारायण अवतरित हुए थे। ब्रह्मरूप करने के लिए ही अक्षरब्रह्म गुणातीतानंदस्वामी को साथ में लाये थे। इस प्रकार मोक्षमार्ग में अक्षरब्रह्म की अत्यन्त आवश्यकता से भी अक्षरब्रह्म भगवान के अत्यंत प्रिय है।

तात्त्विकदृष्टिकोण से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्त्व, प्रधानपुरुष, प्रकृतिपुरुष-इन तत्त्वों के बाद अक्षर तत्त्व है और अक्षरब्रह्म से पर सिर्फ परब्रह्म नारायण है।^{८१} इस प्रकार अन्य तत्त्वों की अपेक्षा से भी परब्रह्म के अत्यंत सन्निकट अक्षरतत्त्व है। इस हेतु से दर्शन का नाम भी अक्षरब्रह्म-परब्रह्म दर्शन उचित होगा।

इन सभी हेतुओं को मिलाकर ही अक्षर सहित पुरुषोत्तम की मूर्ति मध्यमन्दिर में बिठाई गई है। सिर्फ मनोनिहित कल्पना अथवा स्वप्नसृष्टिरूप नहीं है।

आज भी अक्षरब्रह्म की परम्परा में ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज बिराजित हैं। आपके नेतृत्व में लाखों युवान-युवती, साधुगण इत्यादि परब्रह्म की भक्ति करके अध्यात्म प्रगति कर रहे हैं। इस रूप से यह तत्त्वज्ञान जीवन्त है सिर्फ शास्त्र की पोथी नहीं है। भगवान स्वामिनारायण का बीजरूप से कहा हुआ पाँच तत्त्व, ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की उपासना, ब्रह्मस्वरूपिणी अर्थात् निर्गुण भक्ति-ये सभी सिद्धान्त आज वटवृक्ष होकर पूरे विश्व में प्रसिद्ध हुए हैं। यदि बीज में यह सिद्धान्त नहीं होता तो वट में कहाँ

से आयेगा । स्वामिनारायण सिद्धान्त की विकसन प्रक्रिया में भगवान स्वामिनारायण ने वचनामृत में बीज बोये । अक्षरब्रह्म गुणातीतानंदस्वामी ने बोये हुए बीज को अंकुरित करने में सख्त परिश्रम किया, अंकुरित वृक्ष को ब्रह्मस्वरूप प्रागजीभक्त ने अक्षरब्रह्म के प्रकाश से पल्लवित किया । ब्रह्मरूप शास्त्रिजी महाराज ने वृक्ष बनाया, ब्रह्मस्वरूप योगिजीमहाराज ने इस वृक्ष को पुष्पित किया । आज ब्रह्मस्वरूप प्रमुख स्वामी महाराज की निष्ठा में पृथ्वीलोक के अनेक मुमुक्षु इस अक्षरपुरुषोत्तम उपासनारूपी वृक्ष के फलों का उपभोग करके अध्यात्म प्रगति कर रहे हैं ।

सन्दर्भ

१. Ms. Nos. 9006 & 9733, The Oriental Institute, Barod.
२. ब्रह्मसूत्र-अणुभाष्य, रश्मि.-२/३/५०.
३. सत्सिद्धान्तमार्तण्ड, पृ०-१३७.
४. भेदः पारमार्थिकः इति शास्त्रं पुरस्कृत्य त्रिविधो भक्तियोग उक्तः । ते च साम्प्रतं विष्णुस्वाम्यनुसारिणः तत्त्ववादिनः, रामानुजाश्चेति तमोरजः-सत्त्वैर्भिन्नाः । अस्मत्प्रतिपादितश्च निर्गुणः (भागवत, सुबोधिनी-३/३२/३७) उपर लिखा हुआ अनुवाद का आधार-शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद अने पुष्टिमार्ग, पृ०-५, के.का. शास्त्री.
५. ब्रह्मसूत्र-अणुभाष्य-२/३/४३.
६. 'तस्य वेदार्थस्य व्याख्यातारो विष्णुस्वामिमध्वप्रभृतयो ब्रह्माद्वैतवादस्य सेव्यसेवक-भावस्य च विरोधं मन्वाना अभेदबोधकश्रुतिषु लक्षणया भेदपरत्वं स्वीकृत्य शुद्धं भेदमङ्गीचक्रुः । अत एवान्ये भक्तिमार्गाः सगुणाः अयमेव निर्गुणो भक्तिमार्गः'
(अधिकरणसंग्रह-१, मुम्बई-१९१३)
७. सर्वदर्शनसङ्ग्रहः, पृ०-२०९.
८. चैतन्यचरित्रामृत, आदिलाला-६/४०.
९. श्रीबमद्भागवत-२/७/२६
१०. श्रीमन्न्यायसुधा-अनुव्याख्यान-१/१/१२.
११. चैतन्यचरित्रामृत, मध्यलीला-२०/४८, श्रीब्रह्मसंहिता-५/४६.
१२. अनुव्याख्यान-१/१/१२.

१३. महाभारततात्पर्यनिर्णय-१/३७-३९.
१४. श्रीब्रह्मसंहिता-५/४३.
१५. विष्णुतत्त्वनिर्णय-द्वितीय परिच्छेद के प्रारम्भ में, ब्र.सू. मध्वभाष्य-४/२/६-७,
मु.उ. मध्वभाष्य-२/१/२.
१६. चैतन्य चरित्रामृत, आदिलीला-४/५९-६०,७०.
१७. शिक्षापत्री-२०३.
१८. शिक्षापत्री-१०४ से १०८.
१९. शिक्षापत्री-८४.
२०. शिक्षापत्री-८१,८२.
२१. शिक्षापत्री-१२१.
२२. शिक्षापत्री-२३,४७,१४१.
२३. शिक्षापत्री-११६,१२१.
२४. शिक्षापत्री-१०.
२५. शिक्षापत्री-२०६,२०७.
२६. शिक्षापत्री-१२२.
२७. शिक्षापत्रीभाष्य-१.
२८. शिक्षापत्री-११६.
२९. शिक्षापत्री-१२१.
३०. शिक्षापत्री-१०७.
३१. वचनामृत, लोया-७.
३२. वचनामृत, वरताल-१८.
३३. वचनामृत (हस्तप्रत) आर्ष-६५९, पृ०५, पृ०२५३.
३४. सत्संगिजीवन-१/१५/१-२२
३५. हरिवाक्यसुधासिन्धु-१२२/११.
३६. श्रीभाष्य-२/१/९.
३७. वचनामृत, गढ़डा प्रथम-६४.
३८. शिक्षापत्री-१२०.
३९. श्रीशङ्कोपस्वामी, सहस्रगीति- ८/६/५.
४०. श्रीरामानुजाचार्य, वैकुण्ठगद्यम्
४१. श्रीवेदान्तदेशिक, स्तोत्ररत्नभाष्य- पृ०-८९.

४२. गर्गसंहिता-२/३२.
 ४३. वचनामृत, पंचाला-१.
 ४४. गीता-१८/५८.
 ४५. शिक्षापत्री-१००.
 ४६. देखें, वचनामृत गढ़ड प्रथम-३७, ४०, ४५, ६४, ६६, ७१, कारीयाणी-
 ४, ७, लोया-१४, १५, १६, १८, पंचाला-१, ७,
 गढ़डा मध्य-९, १०, १३, ३९, ६४, वरताल-२, १३, गढ़डा अंत्य-७,
 ३०, ३२, ३५, ३६, ३८.
 ४७. श्रीभाष्यम्-१/१/२९.
 ४८. श्रीरामानुजाचार्यकृतगीताभाष्य-४/६, ८/१०, १०/५१.
 ४९. शिक्षापत्री-१५.
 ५०. शिक्षापत्री-१२.
 ५१. वचनामृत, गढ़डा मध्य प्रकरण-८.
 ५२. श्रीभाष्यम्-३/१/१५.
 ५३. शिक्षापत्री रहस्य-पृ०-१४८, १९७१, राजकोट.
 ५४. श्रुतितात्पर्यनिर्णय-पृ०-४-१६.
 ५५. लक्षणानि जीवेशामायाब्रह्मपरात्मनाम् । गुरुप्रसाद-१८१.
 ५६. संक्षिप्त हरिचरित्रामृतसागर, भाग-३, परिशिष्ट-
 ५७. शाण्डिल्यसूत्रभाष्यम्- २/१/१७-१८.
 ५८. गुरुप्रसाद-११७, १८५, ६. सत्संगप्रबोध-३/२, ३/१४, उद्धवसिद्धान्तः-पृ०-
 २८, सत्संगिजीवन-१/५२/९-१०.१०७.
 ५९. श्रीहरिलीलाकल्पतरु-२/५८/४७-४८.
 ६०. हरिचरित्रामृतसागर-३/३३/५४-५५.
 ६१. वचनामृत गढ़डा मध्य-९.
 ६२. वचनामृत गढ़डा मध्य-१३.
 ६३. वचनामृत गढ़डा मध्य-१३.
 ६४. वचनामृत गढ़डा मध्य-१३.
 ६५. वचनामृत गढ़डा अंत्य-३८.
 ६६. हरिवंश, भविष्यपर्व-८४/११.
 ६७. स्कंधपुराण, ब्रह्मखण्ड-४५.

६८. वचनामृत गढ़डा मध्य-२१.
६९. भागवत-२/४/१४.
७०. इसके लिए देखिये,- वचनामृत रहस्य, भाग-३, पृ०-१०६-१६६, भगवान
स्वामिनारायण प्रबोधित अक्षरपुरुषोत्तम उपासना, पृ०-८४-१०५.
७१. वचनामृत गढ़डा प्रथम-७१.
७२. मूळ अक्षरमूर्ति सद्गुरु श्रीगुणातीतानंद स्वामीनी वातो-३/६५.
७३. वचनामृत गढ़डा मध्य-४२.
७४. वचनामृत गढ़डा प्रथम-४१.
७५. हरिवाक्यसुधासिन्धु, सेतुमाला-६९/४९.
७६. वचनामृत गढ़डा मध्य-३१, लो.-७.
७७. वचनामृत वरताल-५.
७८. वचनामृत गढ़डा प्रथम-२३.
७९. वचनामृत गढ़डा मध्य-३०.
८०. वचनामृत गढ़डा मध्य-४२.
८१. वचनामृत गढ़डा प्रथम-६३ का सारांश.

